एकात्म मानव दर्शन

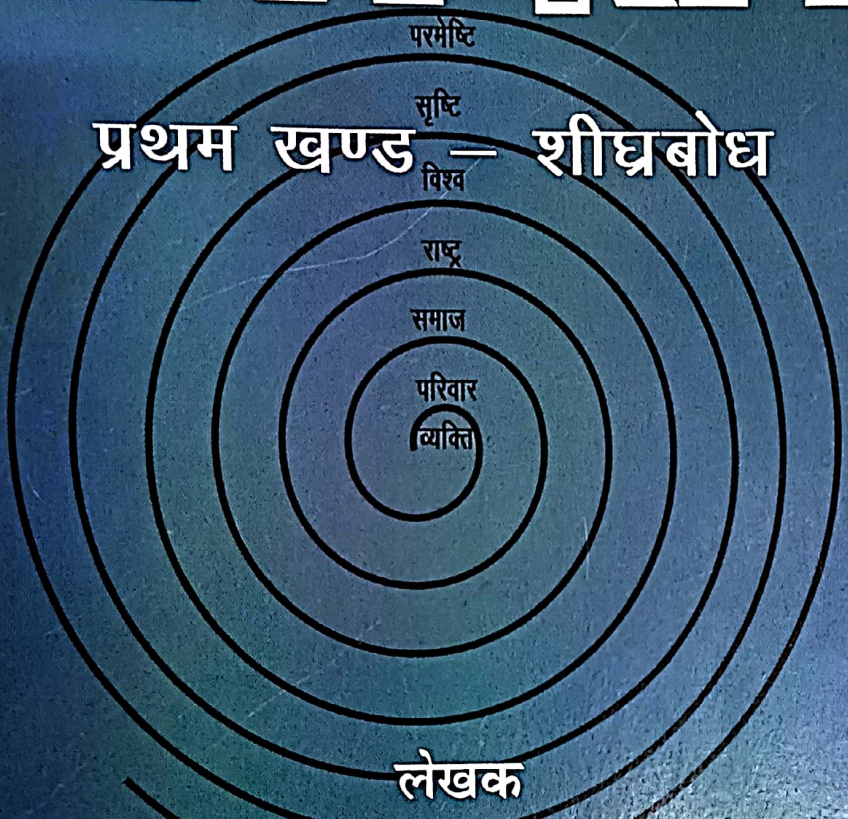

प्रथम खण्ड — शीघ्रबोध

लेखक
डॉ. भगवती प्रकाश शर्मा

स्वदेशी जागरण मंच
15, शिवाजी नगर, उदयपुर

Scanned with OKEN Scanner

लेखक की अन्य कृतियाँ

1. स्वदेशी
2. आर्थिक वैश्वीकरण : बाहरी दबाव जन्य रीतिनीति
3. आर्थिक वैश्वीकरण : वैश्विक षडयन्त्र की रीतिनीति
4. स्वदेशी का शंखनाद
5. विश्व व्यापार संगठन
6. वैश्विक आर्थिक संकट : कारण व समाधान
7. चीन एक सुरक्षा संकट
8. Reasons of Global Meltdown & Lessons for India
9. फुटकर व्यापार में विदेशी पूंजी निवेश
10. FDI in Insurance
11. Chinese Agression
12. विकास की भारतीय अवधारण
13. Nuclear Programme of India
14. मेड बॉय इण्डिया

प्रथम संस्करण : 1000 प्रतियाँ

पौष शुक्ल दशमी 2071 दिसम्बर 31, 2014

Scanned with OKEN Scanner

भूमिका

भारत एक अनादि चिरंतन राष्ट्र है। हमारे प्राचीन वांगमय अर्थात प्राचीन ग्रन्थों यथा वेद, वेदांग, पुराण, इतिहास आदि में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड से लेकर व्यक्ति और अणु–परमाणु से लेकर जीव कोशिकाओं तक की गति–प्रगति और प्रकृति का सम्यक विवेचन किया गया है। हमारे इस प्राचीन वांगमय में व्यक्ति के लिए चिर–सुख, चर्तुविध अभ्युदय के लिये धर्म, अर्थ और काम से लेकर मोक्ष पर्यन्त के उपायों का विस्तृत विवेचन किया गया है। इस हेतु व्यक्ति अथवा मानव मात्र के लिए उसके निजी परिप्रेक्ष्य से लेकर समग्र सामाजिक व वैश्विक परिस्थितियों के अन्तर्गत सभी करणीय कार्यों का "धर्म" के रूप में विवेचन किया गया है। इन ग्रन्थों में धर्म का विवेचन रिलिजियन या पंथ के रूप, में अर्थात पांथिक आचार विचारों के रूप में नहीं किया गया है। सम्पूर्ण विराट ब्रह्माण्ड को एक सचेतन और अन्तःक्रियाशील इकाईयों के समुच्चय के रूप में विवेचित किया गया है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में अंसख्य आकाश गंगायें, उन आकाश गंगाओं के अन्तर्गत हमें हमारे आसमान में दिखाई देने वाली हमारी आकाश गंगा, उस आकाश गंगा के अरबों तारों में हमारा सौरमण्डल, उस सौरमण्डल में हमारी पृथ्वी, इस पृथ्वी पर विद्यमान जीव सृष्टि, उस जीव सृष्टि में हम मनुष्य पर्यन्त सभी अववयों का सम्यक विवेचन हमारे इन प्राचीन ग्रंन्थों में किया गया है। इसके साथ ही भू मण्डल पर विद्यमान जीव सृष्टि, प्राकृतिक वातावरण और मनुष्य के अन्तःसम्बन्धों का भी विवेचन किया गया है। इस ब्रह्माण्ड के उपरोक्त इन सभी अववयों के साथ स्थायी सामंजस्य पूर्वक व्यक्ति को अपने योगक्षेम, सुखचैन एवं इस विराट ब्रह्माण्ड से एकत्व के लिए मोक्ष प्राप्ति हेतु किये जाने वाले सभी कार्यों, कर्तव्यों और उत्तरदायित्वों का भी विवेचन धर्म के रूप में किया गया है। इस प्रकार व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र, विश्व, समष्टि और परमेष्टि अर्थात ब्रह्माण्ड पर्यन्त सबके साथ सामंजस्य के साथ व्यक्ति को अपनी जीवनचर्या किस प्रकार चलानी चाहिये और अपने शरीर, मन, बुद्विऔर आत्मा में एकात्मकता पूर्वक अपने जीवन लक्ष्य रूपी, चारों प्रकार के पुरूषार्थों– काम, अर्थ, धर्म व मोक्ष की सिद्विया प्राप्ति किस प्रकार होनी चाहिये। इनका भी हमारे प्राचीन वांगमय में विस्तृत विवेचन किया गया है। व्यक्ति ही नही, परिवार, समाज, समुदाय, राष्ट्र, विश्व और समाष्टि के चर्तुविध(चारों) पुरूषार्थों– धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की साधना या प्राप्ति भी समाष्टि भाव से किस प्रकार की जानी चाहिये। इस का भी समुचित वर्णन हमारे इन धर्म ग्रन्थों में मिलता है। व्यक्ति से समाष्टि पर्यन्त इन सभी अंगों का अपने लक्ष्य की प्राप्ति के प्रयत्नों में बिना किसी संघर्ष के समन्वय ही एकात्म मानव दर्शन' का हेतु है। इस प्रकार व्यक्ति, परिवार, समाज, समुदाय, राष्ट्र, विश्व और समाष्टि बिना पारस्परिक संघर्ष के और पर्याप्त पारस्परिक सहयोगपूर्ण परिपूर्णता के साथ अपनी लक्ष्य सिद्धि किस प्रकार

Scanned with OKEN Scanner

करें। इसी सम्पूर्ण चिन्तन को एकात्मक मानव दर्शन कहा गया है। हमारा यह सनातन चिन्तन अनादि काल से वैश्विक जीवन का आधार रहा है। यही भारत के प्राचीन गौरव का भी आधार रहा है। विगत 1300 वर्षों के विदेशी आक्रमणों एवं एकागी विचार वाली नवोदित, प्रतिक्रियावादी और हिंसक शक्तियों के आक्रमणों से व दीर्घ परतंत्रता के कारण यह विचार दर्शन विगत कुछ शताब्दियों में खण्डित व विरल हुआ है।

इन दीर्घकालीन आक्रमणों व परतन्त्रता के बाद देश जब 1947 में स्वाधीन हुआ तब स्वाधीनता के बाद जवाहर लाल नेहरू के नेतृत्व में बनी सरकार ने यूरो– अमेरिकी देशों और तत्कालीन महाशक्ति सोवियत संघ के विचारों की टुकड़ों– टुकड़ों में नकल करते हुए एक मिश्रित अर्थव्यवस्था और साम्प्रदायिक विभेदपूर्ण राजनीति व राष्ट्रीय सुरक्षा के प्रति दुर्लक्ष्य के भाव से शासन संचालन प्रारंभ किया। इसके कारण औद्योगिक देशों की तुलना में देश में आर्थिक पिछड़ेपन, गरीबी, व बेरोजगारी की समस्याओं और बढ़ते साम्प्रदायिक अलगावाद से चिन्तित लोगों द्वारा यह प्रश्न किया जाने लगा कि, हमारे देश की जीवनरचना व दिशा या विकास की विचारधरा कैसी होनी चाहिये?इसके समाधान हेतु वर्ष 1964 में स्वं. पं. दीनदयाल उपाध्याय ने 'एकात्मक मानव दर्शन' का विवेचन प्रस्तुत किया और कहा कि हमें अपने इस सनातन विचार दर्शन के आधार पर देश के विकास की दिशा तय करनी चाहिये। लेकिन स्व. श्री दीनदयाल जी की 1967 में निर्मम हत्या हो जाने के बाद इस विचार दर्शन का समुचित विकास नहीं हो पाया। लेकिन आज देश व समाज के विकास के लिए यही एक श्रेयस्कर मार्गचित्र (Road Map) है। यह वर्ष 2014 एकात्मक मानव दर्शन के 1964 में श्री दीनदयाल जी द्वारा किये गये प्रतिपादन का स्वर्ण जयन्ती वर्ष है। इसलिए, इस दर्शन के सम्यक विकास और उसे कृति रूप मे अपनाने का उचित समय आ गया हैं । अस्तु इस दिशा मे चिन्तन को आगें बढ़ाने के लिए एकात्म मानव दर्शन पर यह पुस्तिका प्रस्तुत की जा रही है। इस पुस्तिका के इस प्रथम खण्ड़ में एक प्रांरम्भिक श्शीघ्रबौध के लिए एकात्म मानव दर्शन की संक्षिप्त चर्चा की गई है इसका विस्तृत विवेचन पुस्तक के आगामी तीन खण्ड़ों में किया जायेगा।

उदयपुर

पौष शुक्ल दशमी, २०७१

दिसम्बर 31, 2014

भगवती प्रकाश शर्मा

E-mail: bpsharma131@yahoo.co.in

Scanned with OKEN Scanner

एकात्म मानव दर्शन

प्रथम खण्ड–शीघ्र बोध

एकात्म मानव दर्शन, भारतीय हिन्दु चिन्तन पर आधारित समग्र विश्व व्यवस्था को स्वतः समन्वय पूर्वक संचालित करने का ऐसा विचार दर्शन है जो कि व्यक्ति, समाज, राष्ट्र, विश्व, सृष्टि, समष्टि व परमेष्ठी पर्यन्त जगत के सभी अंगागी घटकों को परिपूर्णता प्रदान करने व उनके विहित लक्ष्य की ओर सामन्जस्य पूर्वक अग्रसर करने में सक्षम है। भारत के सर्व–समावेशी व धारणक्षम विकास हेतु एक सम्यक विचार दर्शन के रूप में इसका विवेचन इस अध्याय में किया जा रहा है। स्व. पण्डित दीनदयाल उपाध्याय द्वारा इस विचार के युगानुकूल प्रतिपादन का अत्यन्त संक्षिप्त विवेचन इस अध्याय में एक शीघ्रबोध के रूप किया जा रहा है। इस अध्याय में वर्णित कुछ पहलुओं पर अपेक्षाकृत विस्तृत विवेचन इसी पुस्तक के आगामी अध्यायों व गद्यांशों में किया जा रहा है।

1. एकात्म मानव दर्शन की पृष्ठभूमि

एकात्म मानव दर्शन व्यक्ति से लेकर विश्व पर्यन्त इस सम्पूर्ण सृष्टि में समन्वय के साथ मानव मात्र के लिये सतत सुखमय जीवन की रचना की दिशा का एकमेव आधार है। हमारे शाश्वत व सनातन चिन्तन पर आधारित होने से 'एकात्म मानव दर्शन' कोई नया विचार नहीं होकर, यह वही विचार या दर्शन है जिसका अनुसरण करते हुए हम अपने सांस्कृतिक दर्शन के अनुरूप जीवन जीते आये हैं। इसी विचार की प्रेरणा से हम वसुधैव कुटुम्बकम के भाव से सुदीर्घकाल से विश्व गुरू का स्थान लिये हुये रहे हैं। इसीलिये, स्वाधीनता के बाद जब भारत में पाश्चात्य भोगवादी पूंजीवाद एवं रूसी साम्यवाद के सर्वथा असंगत सम्मिश्रण की खिचड़ी रूपी मिश्रित अर्थव्यवस्था अपनाने के दौर में अनेक आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक व सांस्कृतिक समस्याओं का सामना कर रहे थे, तब यह प्रश्न उठने लगा था कि, भारत को विकास के किस मार्ग का अनुसरण करना चाहिये। इस प्रश्न के समाधान हेतु ही 1964 में पण्डित दीन दयाल जी उपाध्याय ने एकात्म मानव दर्शन के हमारे शाश्वत व सनातन विचार का युगानुकुल प्रतिपादन किया था।

उस समय के अमरीकी नेतृत्व में चल रही यूरो अमरीकी देशों में प्रचलित भोगवादी पूंजीवाद की व्यवस्था और सोवियत संघ के नेतृत्व में सोवियत संघ, चीन व पूर्वी यूरोप पर्यन्त फैली साम्यवादी व्यवस्था, दोनों ही महाशक्तियों के वर्चस्व को अल्पजीवी ठहराते हुये दीनदयाल जी ने उन्हें मानवता व सृष्टि दोनों के लिये ही पराभवकारी बतलाया कि ये व्यवस्थायें सर्वथा एकांगी, प्रतिक्रियावादी व अधारणक्षम (unsustainable) होने से दीर्घकाल तक नहीं चल सकेंगी।

Scanned with OKEN Scanner

आज हम देखते है कि साम्यवादी सोवियत संघ 14 टुकड़ों में बंट गया, पूर्वी यूरोप में साम्यवाद पूरी तरह काल कवलित हो गया है और चीन भी साम्यवादी मार्ग छोड़ चुका है। वहीं अमरीकी अर्थव्यवस्था भी 2008 में बुरी तरह से आर्थिक पराभव की शिकार हुई और 2010 के बाद से यूरोप भी गंभीर आर्थिक संकट में फंसा हुआ है। एकांगी एवं आतंकी विचारों से पश्चिम एशियाई देश भी जेहादी आतंक का दंश झेल रहे है।

तब दीनदयाल जी का कथन था कि, 'एकात्म मानव दर्शन' का हमारा शाश्वत हिन्दू चिन्तन ही समाज जीवन की उचित व स्थायी रचना व दिशा का निर्धारक है। उनका मत था कि, भारत के लिये विकास की विचारधारा के नाते तत्कालीन साम्यवादी या भोगवादी पूंजीवाद या मिश्रित अर्थ व्यवस्था अथवा अन्य किसी भी वाद के स्थान पर 'एकात्म मानव दर्शन' को ही समाज जीवन की रचना व विकास की दिशा के मार्ग के रूप में अपनाना चाहिये। तब इस विषय पर उनके कई व्याख्यान हुये और उनका प्रकाशन भी हुआ है। लेकिन 1965 में अचानक उनकी निर्मम हत्या के कारण वे इस विचार को और आगे नहीं बढ़ा पाये थे। वैसे उनका यह स्पष्ट मत था एवं हम भी आज यही देखते हैं कि इस विचार में नया कुछ नहीं है। हम इसी विचार दर्शन के अनुरूप अनादिकाल से जीते आये है। भारत के प्राचीन काल के आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक व राजनीतिक उत्कर्ष का आधार रहा है यही दर्शन और प्राचीन राजनीतिक अर्थात् वेद, वेदांग, पुराण, उपनिषद्, दर्शन सूत्रादि ग्रंथों में इसका सुविस्तृत विवेचन हुआ है।

इस विषय में दीनदयाल जी का स्पष्ट कथन था कि भारतीय संस्कृति व दर्शन की आधारभूत विशेषता यह है कि यह व्यक्ति के जीवन से लेकर सम्पूर्ण सृष्टि चक्र पर्यन्त समग्र, संकलित व समेकित (Integrated) या एकात्म विचार करती है। हमारी आज की आर्थिक विषमता, उतार–चढ़ाव, आतंकवाद, अलगावादी, हिंसा, पर्यावरण विनाश, संसाधनों का संकट, असुरक्षा, व्यक्तिगत क्षोभ, तनाव आदि सारी समस्याएँ राष्ट्र जीवन को खण्ड–खण्ड विचार करने के कारण ही है। दीनदयाल जी ने हमारी सभी सामाजिक समस्याओं व उसके मूल में भारत के नेतृत्व पर पश्चिमी व विदेशी प्रतिक्रियात्मक, एकांगी, खण्डित, असंगत व भोगवादी विचारों की ही प्रभाव को उत्तरदायी ठहराते हुये विदेशों की नकल को अनुचित बतलाया था। उन्होंने समन्वित समाज–जीवन व राष्ट्र के लिये सर्वस्पर्शी व स्वतःस्फूर्त विकास के लिये पर्यावरण या पारिस्थिकीय सन्तुलन के साथ, जिस एकात्म विश्वदृष्टि की हमारे शाश्वत दर्शन के आधार पर जो युगानुकूल व्याख्या की थी वह आज सम्पूर्ण विश्व के लिये अनुकरणीय है।

2. एकात्म मानव दर्शन की आवश्यकता

आज सम्पूर्ण विश्व में अपने देश में भी बढ़ती आर्थिक विषमता, अस्थिरता,

Scanned with OKEN Scanner

पर्यावरण संकट, व्यक्तिगत विक्षोभ, सामाजिक तनाव, राजनीति में पतन, भ्रष्टाचार, आतंकवाद, अलगाववाद, माओवादी हिंसा, यूरो–अमेरीकी देशों का आर्थिक संकट, पश्चिम एशिया में फैलता जेहादी संघर्ष आदि सभी, मानव मात्र के लिये गम्भीर असंतोष व संत्रास का कारण बनते जा रहे हैं। इन सभी विषम व अन्तहीन से लगने वाले संकटों के दीनदयाल जी ने निम्न कारण बतलाये हैं :

(1) **एकांगी सोच व खण्ड–खण्ड चिन्तन :** विशेष कर एकान्तवादी मत, पंथ या विविध रिलीजन या एकाकी व अतिवादी आर्थिक विचारधाराएँ

(2) **असहिष्णुता व प्रतिक्रियात्मक व्यवहार :** (जेहादी व माओवादी असहिष्णुता से बढ़ती हिंसक घटनायें) पाश्चात्य देशों व अन्यत्र भी राज्य व सभी विचारधाराओं का उदय प्रतिक्रिया में हुआ है। यथा: (i) यूरोप में रोम के धर्मपीठ के एकाधिकारवाद की प्रतिक्रिया में राज्यों का उदय हुआ है। उसके उपरान्त निरकुंश व अत्याचारी सामन्तशाही की प्रतिक्रिया में लोकतंत्र का विकास हुआ। उसी के साथ मुक्त बाजार अर्थव्यवस्था व औद्योगिक क्रान्ति के विस्तार में उनका औपनिवेशिक विस्तार हुआ। (ii) साम्यवाद का जन्म ही पूंजीवाद के विरूद्ध हिंसक संघर्ष की विचारधारा के रूप में हुआ। (iii) अरब राज्यों का भी जेहादी आक्रमणों का इतिहास रहा है।

(3) **खण्डित दृष्टि** – समग्र के स्थान पर खण्ड–खण्ड विचार करने की वृत्ति

(4) **व्यक्ति का खण्ड–खण्ड चिन्तन :** व्यक्ति के शरीर, मन बुद्धि व आत्मा का अलग–अलग या खण्ड–खण्ड चिन्तन। उसके कारण असंयमित उपभोग व पर्यावरण विनाश आदि समस्याएँ

(5) उपरोक्त खण्ड–खण्ड चिन्तन के कारण भौतिकतावादी अतिरेक व अनियन्त्रित उपभोग

(6) सृष्टि या प्रकृति को अलग–अलग खण्ड–खण्ड देखने से बढ़ता पर्यावरण विनाश

(7) **असंयमित आर्थिक व्यवहार :** एकाकी लाभार्जन के लिये बढ़ती गलाकाट स्पर्द्धा, अधिकाधिक निर्यात व विदेशी निवेश के अवसर पाने की स्पर्द्धा

(8) **अव्यावहारिक नीतियाँ :** मानव, परिवार समाज, समुदाय, देश, विश्व व सृष्टि से असंगत, असम्बद्ध, संवेदनारहित व विरोधाभास युक्त नीतियाँ।

आज की इस खण्ड–खण्ड व बंटी हुयी दृष्टि के स्थान पर एकात्मकता या समेकित विचार के भारतीय अथवा हिन्दू दर्शन से ही एक सहिष्णु जीवन रचना सम्भव है।

3. एकात्म मानव दर्शन की संकल्पना

Scanned with OKEN Scanner

एकात्म मानव दर्शन में व्यक्ति से परमेष्ठी पर्यन्त सभी अगांगी अवयवों अर्थात व्यक्ति, परिवार, समाज, समुदाय, ग्राम, नगर, राष्ट्र, विश्व, सृष्टि, समष्टि और परमेष्ठी के बीच सामंजस्य, सहकारिता एवं एकात्मता के प्रवर्तन–पूर्वक परिपूर्णता के लक्ष्य की प्राप्ति का चिन्तन है। व्यक्तित्व की आन्तरिक सुसंगतता, जिसके अन्तर्गत व्यक्ति के शरीर, मन, बुद्धि व अन्तरात्मा में एकात्मता अभिप्रेत है, ऐसे एकात्म व्यक्ति को जीवन के ध्येय रूपी चारों पुरूषार्थों यथाः धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष की प्राप्ति हेतु यदि इस प्रकार अग्रसर किया जाये कि उससे राष्ट्र व प्रकृति से सामजस्य पूर्वक सुव्यवस्था विकसित हो एवं वह सतत व सहज चलती रहे।

भारतीय संस्कृति व दर्शन, व्यक्ति की अन्तर्निहित (शरीर, मन बुद्धि व आत्मा की) एकता, व्यक्ति से विश्व पर्यन्त सभी अगांगी घटकों (व्यक्ति, परिवार, समाज, समुदाय, राष्ट्र, विश्व, सृष्टि या समष्टि व परमेष्ठी) की एकता व परस्पर अवलम्बन और व्यक्ति के जीवन के उद्देश्यों, जिन्हें हम धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष के रूप में पुरूषार्थ चतुष्ठय भी कहते हैं उन सबके बीच सुसमन्वय के प्रबल पक्षधर है। इसलिये देश की अर्थनीति (कृषि, उद्योग, व्यापार, वाणिज्य, सेवाओं जन–उपयोगिताओं अवसंरचनाओं, विदेशी पूंजी, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार समझौतों सम्बन्धी नीति) शिक्षा, राजनीति, शासन व्यवस्था, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों, जीवन मूल्य, सामाजिक व संस्थागत व्यवहार, संविधान, कानून, विधायिका व कार्य पालिका का व्यवहार सम्बन्धी विविध नीतियाँ, न्याय, प्रशासन आदि सम्बन्धी नीतियों का निरूपण व उनके संचालन में उक्त एकात्मता व अन्योन्याश्रयता को दृष्टिगत रखना होगा। सम्पूर्ण देश, समाज व विश्व के मन मानस में इस एकात्मता का भाव एवं इनके सभी व्यवहार तद्नुरूप हो ऐसी राष्ट्र व विश्व की चिति या समग्र चिन्तन, दर्शन व मूल्य हों, यह एकात्म मानव दर्शन के व्यवहार की आदर्श स्थिति है। व्यक्ति व उस विराट ब्रह्म में एकत्व ही हमारा जीवन ध्येय होना है।

व्यक्ति व समष्टि में एकात्मता :

जैसा कि ऊपर स्पष्ट किया गया है कि एकात्म मानव दर्शन मानव की परिपूर्णता से लेकर हमारी पारिवारिक, सामाजिक सामुदायिक, राष्ट्रीय एवं वैश्विक परिपूर्णता की अपेक्षा करता है और सृष्टि में ऐसी परिपूर्णता की स्थापना प्रेरणा देता है। व्यष्टि से समष्टि पर्यन्त इस परिपूर्णता की प्राप्ति के लिये एकात्म मानव दर्शन सर्वंकश एकात्म विश्व दृष्टि की बात करता है। इस विचार दर्शन के अनुसार व्यष्टि से समष्टि पर्यन्त खण्ड–खण्ड या टुकड़ों–टुकड़ों में विकास की बात नहीं सोची जा सकती है। वरन् व्यष्टि से समष्टि पर्यन्त सभी अंगों पर समग्र व एकात्मकवादी दृष्टि से उनके विकास व उनकी परिपूर्णता व समन्वन का विचार किया जाना चाहिये। इस दृष्टि से इन सभी घटकों के बीच पारस्परिक

Scanned with OKEN Scanner

समन्वय सामंजस्य आवश्यक है, जिस अग्रांकित चित्र के माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है।

यदि व्यक्ति स्वयं को सम्पूर्ण वैश्विक संरचना के एक अंगागी घटक के रूप में मानकर चलता है, तब ऐसी स्थिति में हमारे सारे व्यवहार पर्यावरण व समाज के प्रति सहिष्णुता पूर्ण होंगे। व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र, विश्व, जीव–सृष्टि और परमेष्टी परस्पर अवलम्बित हैं। इन सबके बीच परस्पर संबन्धों को दृष्टिगत रखते हुए ही विश्व के प्रत्येक व्यक्ति को अपना उपभोग व जीवन–चर्या निश्चित करनी चाहिए। प. दीनदयाल जी के इस विचार के अधीन प्रत्येक व्यक्ति को यह विचार मन में रखना चाहिये कि, वह स्वयं कोई स्वायत्त या सम्प्रभु इकाई नहीं होकर वह अपने परिवार व समाज का अंग है। प्रत्येक परिवार, अपने समाज या समुदाय का अंग है। समाज, या समुदाय राष्ट्र का अंग है। राष्ट्र विश्व का, विश्व इस सम्पूर्ण सृष्टि का, और यह सृष्टि उस परमेष्टी का अंग है जो इस सम्पूर्ण व अनन्त ब्रह्माण्ड में संव्याप्त या विस्तारित है। इसलिये हमारा उपभोग इन सभी घटकों के बीच समन्वय पर आधारित होना चाहिये। लेकिन ये सभी परस्पर संलग्न भी हैं। निम्न चित्र 1 में इन्हें अलग–अलग दर्शाया है यह संकेन्द्री रचना भी पाश्चात्य खण्ड दृष्टि को दिखलाती है।

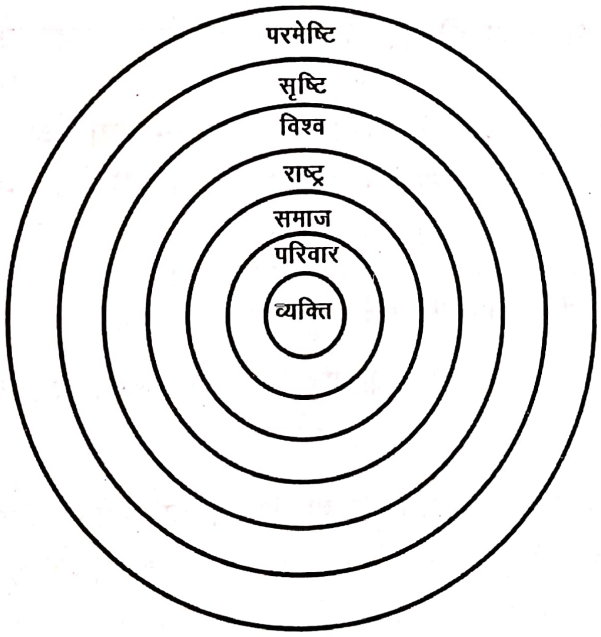

चित्र 1: पाश्चात्य संकेन्द्री दृष्टि

वस्तुतः मानव, परिवार, समाज, विश्व आदि के रूप में ये वलय भी पृथक–पृथक या खण्ड–खण्ड पृथकता वाले घटक न होकर एक ही समेकित इकाई के परस्पर अवलम्बित व अविच्छिन्न घटक हैं। इन्हें, एकात्म मानव दर्शन के भारतीय चिन्तन की व्याख्या करते

Scanned with OKEN Scanner

हुये, स्व. दीनदयाल जी उपाध्याय ने निम्नानुसार अखण्ड मण्डलाकार रूप में दर्शाया है।

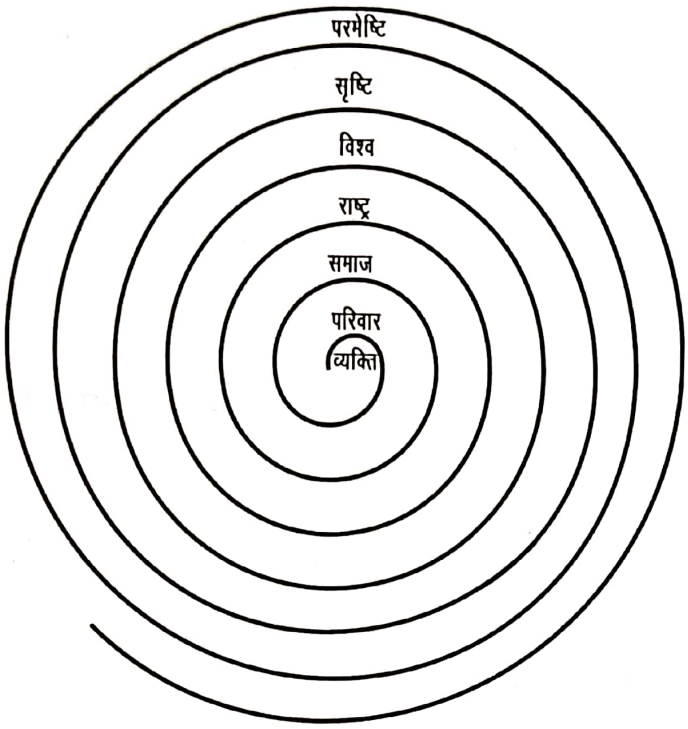

चित्र 2 : भारतीय विचार आधारित अखण्ड मण्डलाकार प्रस्तुति

इस प्रकार व्यक्ति यदि समष्टि से एकात्मकता का अनुभव कर अपनी आवश्यकताओं की पूर्त्ति हेतु न्यूनतम ग्रहण करें और वह भी केवल नवकरणीय साधनों से तब ही यह सृष्टिक्रम अनवरत निर्बाध जारी रहेगा।

एकात्म मानव दर्शन के अध्ययन की रूपरेखा :

इस व्यष्टि से समष्टि पर्यन्त अखण्ड मण्डलाकार सामंजस्य की चर्चा में निम्न बिन्दु प्रमुख है।

- **व्यक्ति चिन्तन :** एकात्म या परिपूर्ण मानव अर्थात् केवल शरीर व उसकी आवश्यकताएँ ही नहीं वरन् शरीर, मन, बुद्धि व आत्मा का समुच्चय। इसलिये केवल शारीरिक सुख नहीं चतुर्विध सुख की धारणा।
- **व्यक्ति के जीवन लक्ष्य :** चतुर्विध पुरूषार्थ अर्थात अर्थ, काम, धर्म व मोक्ष
- **परिवार चिन्तन :** सामूहिक आदर्शों व मूल्यों की सर्वोपरिता, पारस्परिक सहकार, शरीरवत संवेदना, सांस्कृतिक विरासत के प्रति प्रतिबद्धता व उसकी निरन्तरता को प्रवाहमान रखना, बिछुड़े परिजनों को पुनः मुख्यधारा में लाना।

Scanned with OKEN Scanner

- **राष्ट्र व समष्टि चिन्तन :** भारत एक प्राचीन राष्ट्र, हिन्दुत्व ही राष्टीयत्व की पहचान, हिन्दू राष्ट्र की सार्वभौमिकता, अन्य पांथिक राष्ट्रीयताओं का उद्‌गम,राष्ट्र की एकात्मता, राष्ट्रीय चिति व उसका सशक्तिकरण, राष्ट्रीय पुरूषार्थ अर्थात् राष्ट्र के लिये धर्म, अर्थ, काम मोक्ष की सिद्धि की प्रासंगिकता संकल्पता व उसे साकार करना।

- **समष्टि के पुरूषार्थ व विश्व :** वैश्विक सामजस्य, सामूहिक मूल्यों का विकास, विश्व धर्म, अंतर्राष्ट्रीय संबंध व वैश्विक संस्थायें और उनमें एकात्म दर्शन की प्रासांगिकता व उसका कृतिरूप

- **एकात्मक समाज व्यवस्था**

- **परमेष्ठी चिन्तन :** विराट ब्रह्म, उसका स्वरूप एवं विराट की एकात्मता का बोध और उसके साथ एकरूपता

- **एकात्मक दर्शन का समग्र जीवन व्यवहार :** देश व विश्व के सम्बन्ध में व्यक्ति मात्र के लिये जीवन की राह का निरूपण व उसे अपनाना

टिप्पणी : उपरोक्त 9 शीर्षकों का विस्तृत विवेचन इस पुस्तक के द्वितीय व तृतीय भागों में किया जायेगा। इस शीघ्र बोध खण्ड में इनकी अति–संक्षिप्त समीक्षा यहाँ की जा रही है।

3.1 व्यक्ति अर्थात् एकात्म मानव या परिपूर्ण मानव की अवधारणा – पश्चिम में मनुष्य को अधूरा, सदैव अधिकाधिक उपभोग के लिये लालायित एवं कभी संतुष्ट न होने वाली असीम भौतिक आवश्यकताओं के आश्रय के रूप में देखा गया है। पश्चिमी विचार में यह माना जाता है कि व्यक्ति की आवश्यकताएँ असीम और निरन्तर बढ़ती रहने वाली है। इस विचारधारा के अनुसार व्यक्ति की निम्न स्तरीय आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाने पर उत्तरोत्तर उच्च स्तरीय आवश्यकताऐं अधिक प्रदाता के साथ उपजती रहती है। अर्थात् सर्वप्रथम शारीरिक आवश्यकताएँ (भोजन, वस्त्र, मकान आदि) उनकी पूर्ति के बाद सुरक्षा सम्बन्धी आवश्यकताऐं (व्यक्तिगत सुरक्षा, आर्थिक सुरक्षा, स्वास्थ्य रक्षा आदि), स्नेह सम्बद्धता व सामाजिकता की आवश्यकताऐं, व्यक्तिगत सम्मान व अहंकार संतुष्ठि की आवश्यकताऐं और अन्त में आत्म प्रत्यक्षीकरण सम्बन्धी सारी वैयक्तिक आवश्यकताऐं उत्तरोत्तर एक की संतुष्टि के बाद एक उत्पन्न होती रहती है।

एकात्म मानव दर्शन के अन्तर्गत व्यक्ति को आर्थिक प्राणी, सामाजिक प्राणी, जैविक

Scanned with OKEN Scanner

प्राणी, राजनीतिक प्राणी आदि के रूप में अलग–अलग नहीं रखा जाता है। वैयक्तिक भौतिक आवश्यकताओं के ऊपर समष्टि तक का विचार उसका मन, बुद्धि व आत्मा करे, यह धारण की जाती है।

भारतीय चिन्तन के अनुसार व्यक्ति शरीर, मन, बुद्धि, आत्मा के बीच समन्वय से युक्त एक संयुक्त प्राणी है। जहाँ शरीर अर्थात् भौतिकता पर मन का नियन्त्रण, मन पर बुद्धि का नियन्त्रण एवं बुद्धि पर आत्मा या अन्तरात्मा का नियंत्रण होता है। इसलिये व्यक्ति अपनी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये निरंकुशता की तरफ नहीं बढ़ता है। हमारे शरीर, मन, बुद्धि व आत्मा की एकता ही हमारे व्यक्तित्व में सुसंगतता लाती है। सुख की एकांगी कल्पना में केवल शारीरिक सुखोपयोग व असंयमित उपभोग की ओर ले जाती है।

शारीरिक सुखों के साथ मन, बुद्धि व आत्मा का विकास भी आवश्यक है। यही व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास है। इसी से व्यक्ति शरीर का जैविक आवश्यकताओं व पशुवत शारीरिक आवश्यकताओं से ऊपर उठकर मानवता की ओर बढ़ता है, व्यष्टि से समष्टि की ओर एवं आगे चल कर परमेष्ठी या परमात्मा अर्थात् निष्काम भाव से मोक्ष की ओर बढ़ता है।

शरीर के साथ मन बुद्धि व आत्मा के एकत्व से ही उपभोग के साथ–साथ संयम, धारणक्षम उपभोग (Sustainable Consumption), परिवार, समाज, राष्ट्र व मानवता के लिये का समर्पण का भाव और अधिकारों के साथ साथ कर्त्तव्यों का भी बोध होता है। अपने स्व या व्यक्तित्व और उसके अहम् का भान होने के साथ–साथ समष्टि व परमेष्ठी बोध का भी, अर्थात् आध्यात्मिकता का भी विकास होता है। इससे भौतिक व आध्यात्मिक उन्नति में सन्तुलन रहता है।

संक्षेप में : **शरीर** = भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति

मन = सुरक्षा –बोध आत्म गौरव का बोध

बुद्धि = मानवोचित संवदेनाएँ, संयमित व धारणक्षम उपयोग (Sustainable Consumption) समाज के प्रति कर्त्तव्य व दायित्वों का बोध, समाज व राष्ट्र व समष्टि के प्रति संवेदना।

आत्मा=आध्यात्मिकता, आत्मवत सर्वभूतेषु का भाव, परमात्मा से साक्षात्कार की इच्छा और परमात्मा या विराट से एकाकारिता अर्थात् मोक्ष

3.2 एकात्म मानव के जीवन के लक्ष्य चतुर्विध पुरूषार्थ – हमारे जीवन हमारे

Scanned with OKEN Scanner

उद्देश्य का चारों प्रकार के लक्ष्यों की समन्वय पूर्वक प्राप्ति पर बल देता हैं। वे लक्ष्य हैं हमारे पुरूथार्थ चतुष्टय – धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष। धर्माधारित जीवन रचना ही धर्म नियन्त्रित अर्थ व काम से मोक्ष प्राप्ति का साधन सिद्ध होती है। समाज की धारणा के लिए आवश्यक आधार व नैतिकता के नियम ही धर्म है।

भारतीय संस्कृति ने इन लक्ष्यों को 4 पुरूषार्थों में बांटा है। पुरूषार्थ का अर्थ ही है : 'पुरूषैः अर्थ्यते इति', यानि मनुष्य जिनको चाहता है वे ही पुरूषार्थ हैं। इनके नाम है धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष।

धर्म – धर्म से अर्थ है कर्तव्यपरायणता, आचार–विचार, सदाचार का पालन, सामाजिक मूल्यों का संरक्षण, देश के संविधान व नियमों का पालन, उचित शिक्षा–दीक्षा। धर्म मत–पंथों से अलग है। इसका अर्थ रिलीजन नहीं है।

अर्थ – अर्थ से तात्पर्य अपनी भौतिक या शारीरिक आवश्यकताओं के लिये धन की प्राप्ति, स्वयं व परिवार के योगक्षेम व समृद्धि के लिये प्रयास, इन दोनों ही बातों के लिये धन उपार्जन आधारित कर्म करना। जीवन में अर्थ का अभाव न रहे पर हमारे मन पर अर्थ की अधिकता का विचार भी न उत्पन्न हो या प्रभाव न हो।

काम– काम से आशय अपनी सभी प्रकार की कामनाओं की पूर्ति के लिये प्रयत्न करना। इसमें इन्द्रिय सुखों के लिये शारीरिक आवश्यकताऐं व उनकी पूर्ति यथा भोजन, वस्त्र, मकान आदि परिवार का योगक्षेम, मानसिक कामनाओं की पूर्ति, सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति आदि सम्मिलित होते है। यहाँ पर योगक्षेम से आशय है – योग अर्थात् अप्राप्ति की प्राप्ति व क्षेम से अभिप्राय – प्राप्त की सुरक्षा। लेकिन काम की पूर्ति के लिये अर्थ, उपार्जन, पूर्ण नैतिकता एवं धर्म युक्त आचरण से ही करने का विधान है। अर्थात् कामनाओं को धर्म की मर्यादा में रखना आवश्यक समझा गया हैं। इसके विपरित जीवन के चरम लक्ष्य की प्राप्ति के लिये अपनी कामनाओं पर विजय पाते हुए निष्काम होने का भी निर्देश है।

धर्म पुरूषार्थ के द्वारा अर्थ पुरूषार्थ व काम पुरूषार्थ का संयमन किया जाता है। धर्म का अर्थ है– कानून का शासन एवं सामाजिक नैतिकता का नियमों का पालन। अपना हाथ कहीं भी घूमा लेने की आजादी वहां समाप्त हो जाती है जहां दूसरे व्यक्ति की नाक है। हमारी प्रगति, असत साधनों से अनैतिकता, शोषण से न हो। वह प्रकृति व समाज के किसी भी वर्ग के लिए घातक न हो। प्रत्येक व्यक्ति अपने धर्म, काम की उपलब्धि के साथ प्रगति व समाज के अनुकुल रहे उसका भी पोषण करें यह धर्म पुरूषार्थ सुनिश्चित करता है। धर्म पुरूषार्थ का अवस्थान बुद्धि में है।

Scanned with OKEN Scanner

मोक्ष – मोक्ष से अभिप्राय अपनी कामनाओं पर विजय प्राप्त कर विराट से एकाकार होने से है। विराट से आशय इस सम्पूर्ण ब्रम्हाण्ड को व्याप्त करने वाले ब्रम्ह से है। इस प्रकार स्वयं को समष्टि के साथ एकाकार मानते हुए जगत के लिये स्वयं को आत्मविलोचित करने से है। इस प्रकार स्वयं को राष्ट्र सृष्टि व समष्टि के लिये समर्पित करने को ही जीवन का अन्तिम लक्ष्य माना गया है। अर्थात अपनी भौतिक कामनाओं की पूर्ति व उनके लिये अर्थ या धन कमाने में धर्म अर्थात मर्यादाओं का पालन करते हुये निष्कामता पूर्व मोक्ष अर्थात विराट से एकाकार होने की ओर बढ़ना चाहिये।

'मोक्ष' पुरूषार्थ का अर्थ है, व्यक्ति अपने जीवन का व्यापक – विराट–चरम लक्ष्य जिसे भी वह मानता हो, इसकी साधना करे, इस ओर निरन्तर अग्रसर होता रहे और अन्ततः उसे प्राप्त कर ले, प्रकट कर ले।

यह चारों पुरूषार्थ हमारी सांस्कृतिक अवधारणा के महत्वपूर्ण अंश है।

संयमित जीवन :

भारतीय संस्कृति में अमर्यादित उपभोग को अच्छा नहीं माना गया है। व्यक्ति केवल उपभोक्ता नहीं और प्रगति का मतलब केवल बाजारवाद नहीं है। भारत का व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं की एक सीमा तय कर लेता है। उतने की व्यवस्था होने पर अपना शेष समय वह जीवन के अन्य उपयोगी कलाओं के विकास लोक सेवा आदि कार्यों में लगाता है।

अतः यहां उनका ज्यादा आदर होता है, जो सग्रह की अपेक्षा अधिकाधिक छोड़ते जाते हैं और एक उद्देश्यपूर्ण जीवन जीते है।

परिवार संस्था : परिवार हमारी संस्कृति का संवाहक है व हमारी शक्ति का स्रोत भारत में विवाह को 'संविदा' नहीं माना गया है। यह बन्धन सामान्यतया जीवन–भर का होता है। परिवार में सब संबंधों का आदर होता है व संयुक्त परिवार में सब एक दूसरे को यथायोग्य देकर सामूहिक जीवन जीते है। परिवार के सम्बन्ध पारस्परिकता आधारित होते हैं।

भारतीय समाज व्यवस्था में, व्यक्ति की जगह परिवार को मूल इकाई माना गया है।

मनुष्य प्रकृति सम्बन्ध : प्रकृति दिव्य है। हमारा जीवन आधार है और चिन्मयी है। मनुष्य उसका स्वामी नहीं है उसका साधक है।

इसलिए, मनुष्य प्रकृति से आवश्यकता भर ग्रहण करे और जितना लिया, उसे लौटाने,

Scanned with OKEN Scanner

प्रकृति को स्वस्थ रखने की जिम्मेवारी निभाएं।

प्रकृति और चराचर जगत में, जो अपने पर बड़ा उपकार करते हैं, उनके प्रति कृतज्ञ होना, हमारी संस्कृति का अंश है इस दृष्टि में गाय व गंगा माँ है। पर्वतों से, नदियों से, वृक्षों से पशु–पक्षियों से आदर व नेह के संबंध थे। पहली रोटी गाय के लिए, थोड़ा आटा चीटीं के लिए बाहर पानी पक्षियों के लिए। यह संबंध भी पर्यावरण संरक्षण का दार्शनिक आधार है।

राज्य व राजनैतिक सत्ता की उपेक्षा उचित नहीं : मध्य युग और आधुनिक युग में भारतीय राष्ट्र के प्रति अनादर के व विसंवादी स्वरों ने हमें चेताया है कि सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के राजनैतिक सन्दर्भ की उपेक्षा घातक होती है। राजनीति की उपेक्षा का दण्ड भारतीय समाज हजारों वर्षों की गुलामी के रूप में भोग चुका है। अर्थ और काम का वैराग्य, राजनीति का भी वैराग्य बन जाए– यह उचित नहीं है। विचार का स्वतंत्रता और सद्भाव एक ताकतवर राष्ट्र में ही सुरक्षित रह सकत हैं। हमारा सांस्कृतिक राष्ट्रवाद हमें बताता है कि हम मजहबी राज्य (थियोक्रेटिक स्टेट)कभी नहीं रहे पर हमारा राजधर्म रहा है। धर्माधिष्ठित राजनीति का हमारे राष्ट्र में सम्मान था। मर्यादापुरूषोत्तम राम के बारे मे कहा गया– रामो विग्रहवान् धर्मः राम तो मूर्तिमान धर्म ही है। राजनीति सच्चे राजधर्म से निर्देषित होकर ही कल्याणकारिणी बनती है।

मिश्रित संस्कृति नहीं : हमने अपने दरवाजे और खिड़कियां समस्त विश्व से आने वाले विचारों के लिए खुले रखे है। ऋग्वेद ने कहा है, 'आ नो भ्रदाः कतवो यन्तु विश्वत्:' अर्थात् सब दिशाओं से मिलने शुभज्ञान। बाहर से आने वाले विचार– प्रवाहों की शुभता व अनुकूलता जांच कर उसे अपनी परिस्थति के अनुसार अपनाने के लिए हम हमेशा तैयार रहे है।

पर इस कारण भारतीय संस्कृति को अनेक पंथों की मिश्रित (कम्पोजिट) संस्कृति कहना गलत होगा। हमारी भारतीय संस्कृति आज भी एकात्म है। हम उसके युगानुकूल संशोधन परिवर्द्धन करते रहे है।

एक जीवन्त राष्ट्र :

- राष्ट्र यह केवल व्यक्तियों के समूह को नही कह सकते है। किसी क्लब या कम्पनी के जैसे, राष्ट्र का निर्माण किसी समझौते या संविदा से नहीं होता। राष्ट्र स्वयंभू होता है। वह जीवमान होता है।
- मनुष्यों की तरह, राष्ट्र का भी शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा होते हैं। राष्ट्रों का जन्म भी उनके किसी नियत उद्देश्य के लिए होता है। उनके जीवन और अस्तित्व की

Scanned with OKEN Scanner

सार्थकता, उस उद्देश्य को सफल बनाने में होती है।

- राष्ट्र का शरीर उस देश 'भूमि' एवं उसपर निवास करने वाला वह समाज होता है, जिसके देश की धरती के साथ श्रद्धा के सम्बन्ध होते है। जैसे भारतीय समाज के लिए भारत भूमि अपनी दिव्य चिन्मयी माँ है।
- समाज का देश और अपनी संस्कृति के साथ जो भावनात्मक सम्बन्ध होता है, वहीं राष्ट्र का मन है।
- अपनी सुदीर्घ जीवन में, विकसित समाज की दर्शन सम्पदा और व्यवस्थित समाज जीवन के लिए बनाए गए कानून राष्ट्र की बुद्धि है। भारतीय समाज के लिए इस बुद्धि में शामिल है, वेद, उपनिषद्, गीता सब धार्मिक ग्रंथ भारत का संविधान और कानून।

3.3 **व्यष्टि से परमेष्ठी तक सामन्जस्य** – एकात्मक मानव दर्शन, व्यक्ति, परिवार, समाज, समुदाय राष्ट्र, विश्व, सृष्टि व परमेष्ठी के बीच समन्वयपूर्वक, मानव मात्र के धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष आदि चारों पुरूषार्थी को सिद्ध करने वाला है। इस सुसमन्वय के लिये निम्न बने परमावश्यक है।

क. व्यक्ति – व्यक्ति की परिपूर्णता के लिये उसके शरीर, मन, बुद्धि अति अर्न्तात्मा के बीच समन्वय आवश्यक है। साथ ही व्यक्ति का अपने परिवार के साथ सामन्जस्य व पारिवारिक सौहार्द भी अनिवार्य है।

ख. परिवार – परिवार हमारी सांस्कृतिक विरासत का सबसे अनमोल उपहार है जो व्यक्ति की सुरक्षा का आधार व मानवोचित कर्तव्यभाव, स्नेह, संवाद और सांस्कृतिक मूल्यों का संवहन अत्यन्त अनिवार्य है। जिस प्रकार व्यक्ति का परिवार के साथ सामन्जस्य आवश्यक है, उसी प्रकार परिवार का समाज के साथ सामन्जस्य आवश्यक है। आजकल परिवार रचना पर नियोजित आघात होते भी दिखलायी दे रहे हैं।

ग. समाज – समाज एवं सामाजिक मर्यादाऐं जहाँ व्यक्ति व परिवार को धर्माधारित बनाये रखता है, वहीं समाज के निर्माणकर्ता व्यक्ति परिवारों में समाज, सामाजिक आधार–विचार, सामाजिक संस्कारों व सामाजिक मूल्यों के प्रति पूर्ण समर्पण होना चाहिये।

घ. राष्ट्र – राष्ट्र की अवधारणा वैदिक काल से ही प्रचलित रही है। भारत अपनी साझी सांस्कृतिक विरासत के कारण भारत एक अति प्राचीन सांस्कृतिक राष्ट्र है। विगत दो सहस्त्राब्दियों में बने अनेक पाथिक व भू–राजनैतिक राज्यों के बनने के पूर्व भारत की इस भू–सांस्कृतिक एकता, के वैश्विक व्याप के आज भी अनेक प्रमाण प्रकट हो रहे है। लेकिन, आज की भू–राजनीतिक सीमाओं से युक्त भारत की सघन

Scanned with OKEN Scanner

सांस्कृतिक एकतावश निर्विवाद रूप से भारत भू–सांस्कृतिक दृष्टि से हिन्दू राष्ट्र है। देश की इस अदादिकालीन भू–सांस्कृतिक एकता, सामायिक वैश्विक परिवेश व परिवर्तनों अप्रभावित रहा है। हमारा हिन्दू राष्ट्र सांस्कृतिक एकात्मता से ही जाना जाता है, क्योंकि संस्कृति ही राष्ट्र के गठन का मुख्य आधार होता है।

अपना राष्ट्रजीवन बाहृतः अनेक पंथोपपंथ, संप्रदाय तथा जाति–उपजातियों अथवा कभी–कभी अनेक राज्यों में विभक्त हुआ दिखने के बावजूद उनकी सांस्कृतिक एकात्मता युगों से अविच्छिन्न रही है। जिस मानव समुदाय का यह एकात्म प्रवाह रहा है, उन्हें हिन्दू के नाम से संबोधित किया जाता है। इसलिये भारतीय राष्ट्रजीवन ही हिन्दू राष्ट्रजीवन है।

हिन्दू राष्ट्र के दो अर्थ निकाले जा सकते है– एक हिन्दुओं का राष्ट्र और दूसरा हिन्दू जीवन पद्धति जहाँ हो ऐसा हिन्दू राष्ट्र। दूसरे अर्थ में हिन्दू एक गुणवाचक विशेषण है। इस हिन्दू विशेषनाम को गुणवाचकत्व, अत्यन्त प्राचीन इतिहास, सुख–दुःख के समान प्रसंग, अच्छे–बुरे, श्रेय–हेय निश्चित करने के आधारतत्व, श्रेयस्कर और आदर्श आधारतत्व को अपने जीवन में उतरवानेवाले महापुरूषों के प्रति आदर व अपनेपन की समान भावना तथा इन महापुरूषों का विरोध करने वालों के बारे में प्रतिकूल भाव, इन सभी के समुच्चय से प्राप्त हुआ है। इन सभी के समुच्चय का अर्थ है संस्कृति। अतः हिन्दू राष्ट्र का पहला अर्थ होगा, यह संस्कृति, यह मूल्य व ऐसे विचार माननेवालों का राष्ट्र दूसरा अर्थ होगा 'यह संस्कृति, यह मूल्य व यह विचार माननेवाला राष्ट्र'। तत्वतः ये दोनों अर्थ उपयुक्त है फिर भी पहिला व्यावहारिक दृष्टि से बहुधा अधिक उपयोगी रहेगा।

यह हिन्दू राष्ट्र था और आज भी है। हम जब हिन्दू राष्ट्र के पुनरूत्थान अथवा प्रतिस्थापना की बात करते है, तब अपने समाजजीवन में इन मूल्यों को अच्छी तरह प्रतिस्थापित करना है, ऐसा इसका अपेक्षित अर्थ है। हिन्दुत्व का अर्थ है सर्वसाधारण रूप से हिन्दू संस्कृति का मूल्याशय। अफगानिस्तान से इण्डोनेशिया पर्यन्त सहस्त्रावादियों तक एक साझी संस्कृति रही है। सब लोगों की विदेशी आक्रमणों की 1300 वर्षों की साझी अनुभूतियाँ भी रही हैं। हम जर्मनी का उदाहरण ले। दूसरे विश्व युद्ध के बाद जर्मनी का पूर्वी व पश्चिमी जर्मनीमें विभाजनहो गया था। लेकिन साम्यवादका पतन होते ही वह दो भाग एक हो गये। अर्थात् वहाँ राज्य 2 थे पर राष्ट्र एक था। भारत एक सार्वभौम हिन्दु राष्ट्र रहा है इसका विवेचन आगे बाद में किया गया है।

"पृथिव्यै समुद्र पर्यन्ताया एक राष्ट्र इति" की वेदिक उक्ति 2–3 सहस्त्राब्दि पूर्व,

Scanned with OKEN Scanner

समस्त भूमण्डल पर एक साझी हिन्दु संस्कृति के संवाहक एकात्म राश्ट्र के, अस्तित्व में होने का प्रमाण देती है। उस सांस्कृतिक एकात्मकता से युक्त राष्ट्र में, भिन्न–भिन्न शासन प्रणालियों से युक्त राज्यों का वर्णन भी वेदों में प्रचुरता से आया है। इसका विवेचन भी आगे बिन्दु क्रमांक 1.3 में किया है। कालान्तर में उसी सांस्कृतिक एकात्मकता युक्त राष्ट्र के भारतीय उपमहाद्वीप कहलाने वाले क्षेत्र में सीमित हो जाने के बाद भी इण्डोनेशिया से ईरान तक 7 वीं सदी तक, एक सांस्कृतिक हिन्दू राष्ट्र–जीवन के प्रचलन मे होने के प्रचुर प्रमाण अवशिष्ट हैं।

वैसे आज का सम्पूर्ण भारतीय उपमहाद्वीप ही हिन्दू राष्ट्र है व इसकी संस्कृति को पाकिस्तान भी समान रूप से मान्यता देता रहा है। कुछ वर्ष पूर्व पाकिस्तान तक ने संस्कृत व्याकरणाचार्य पाणिनी का 2000वां जन्मदिन मनाया था। पाणिनी की अष्ठाध्यायी विश्व की उपलब्ध सभी व्याकरणों में प्राचीनतम है। पाणिनी का जन्म भी पाकिस्तान में हुआ था व वहीं उन्होंने अष्ठाध्यायी की रचना की थी। इसलिये पाकिस्तान को पाणिनी ने अपनी सांस्कृतिक विरासत का अंग माना था। भारतीय उपमहाद्वीप के तीनों देशों भारत, पाकिस्तान व बांग्लादेश को आबद्ध करने वाली इस संस्कृति की जड़ें बहुत गहरी है। इस बात को पाकिस्तान की स्थापना के तुरन्त बाद वहां के पुरातत्वीय परामर्शदाता आर.ई.एम. व्हीलर ने '5000 इयर्स ऑफ पाकिस्तान' (पाकिस्तान के पांच हजार वर्ष) नामक पुस्तक की रचना कर व्यक्त की थी। 1947 के पूर्व के पाक इतिहास में भी भारतीय संस्कृति का समावेश होना ही है। उस पुस्तक की भूमिका में पाकिस्तान ने तत्कालीन वाणिज्य एवं शिक्षामंत्री फ़ज़लुर्रहमान ने इसे स्वीकारा था।

आज के स्वाधीन भारत में भी, पूर्व में कामरूप (आसाम क्षेत्र) से पश्चिम में द्वारिका तक और उत्तर में त्रिविष्टप अर्थात तिब्बत से कन्याकुमारी तक, प्राचीन हिन्दू संस्कृति अपने सघन रूप में विद्यमान है। सांस्कृतिक दृष्टि से भारत के इस, एक सांस्कृतिक राष्ट्र के रूप में संचालित समाज–जीवन पर हाल ही के वैश्विक घटनाक्रम क्या प्रभाव रखते हैं, इस विषय पर इस लेख में संक्षिप्त चर्चा की जा रही हैं। संस्कृति राष्ट्रवाद पर वैश्विक घटनाक्रमों के प्रभाव पर केन्द्रित इस लेख के दूसरे भाग में, इन घटनाक्रमों की चर्चा के पूर्व प्रथम भाग में कुछ उद्धरण इस दृष्टि से उद्धृत किये जाने भी समीचीन हैं जो विश्व में विद्यमान वर्तमान मत–पंथो के जन्म के पूर्व, अति प्राचीन काल से हिन्दू वांग्ड़मय में उद्धृत राष्ट्र की एक अत्यन्त उन्नत संकल्पना का संकेत करते हैं।

सांस्कृतिक राष्ट्रवाद

हम सभी भारतवासी एक जन, एक देश और एक संस्कृति–हिन्दू संस्कृति के संवाहक

Scanned with OKEN Scanner

हैं, व इसी के आधार पर भारत एक हिन्दू राष्ट्र है। ज्ञात इतिहास के प्रारंभ से ही यहां एक समुन्नत संस्कृति और सभ्य जीवन था। इस सन्दर्भ से हमारा राष्ट्र अनादिकाल से है।

भारत की राष्ट्रीयता, अपनी मातृभूमि के प्रति श्रद्धा, सुख–दुख की एक सी स्मृतियां, एक ही पूर्वज श्रृंखला और भविष्य के एक से सपनों प्रकट होती है। यही है : भू सांस्कृतिक राष्ट्रवाद।

हमने इस बात को शुरू से ही समझा, कि एक ही सत्य को विद्वान अलग–अलग ढंग से समझते और कहते हैं। वेदवाक्य 'एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति' इस को अभिव्यक्त करता है।

हमारे इस विश्वास के कारण, हमने आस्था और विचार के स्वातंत्र्य को स्वाभविक रूप से जीया है।

हमारी संस्कृति यह स्वीकार करती है, कि परमात्मा तक जाने के अनेक मार्ग हैं, क्योंकि लोगों की रूचियां भिन्न भिन्न हैं, क्षमताएं भिन्न–भिन्न है। अतः सब एक ही पथ पर कैसे चल सकते है?शिवमहिम्न स्तोत्र सूत्र में कहा है–

रूचीनां वैचित्र्यादृजु कुटिलनानापथजुषां।

नृणामेको गम्यस्त्यवमसि पयसामर्णव इव।।

अर्थात् अपनी भिन्न–भिन्न रूचि के अनुसार सीधे या टेढ़े मार्ग पर श्रद्धापूर्वक चलते हुए सभी साधक, हे प्रभु तुम तक इसी प्रकार पहुंचेंगे जिस प्रकार उत्तर, दक्षिण, पूर्व पश्चिम किसी भी दिशा की ओर बहने वाली नदियां समुद्र तक पहुंचती हैं; श्री रामकृष्ण परमहंस कहते है थे, ''जतो मत ततो पथ' जितने मत हैं, भगवान तक पहुंचन के उतने ही पथ हैं' विनोबा भावे ने इसे भरतीय संस्कृति का विशिष्ट लक्षण बताते हुए इसको ''भी–वाद'' का नाम दिया है। इसका अर्थ हुआ कि यदि हम सब श्रद्धापूर्वक अपने अपने मार्ग पर चल रहे हैं, तो लक्ष्य तक तुम्हारा भी पहुंचेगा एवं मेरा भी। इस से धर्म या विचार के आधार पर संघर्ष या दमन इतयादि की संभावना ही नष्ट हो जाती है।

अपने सुदीर्घ जीवन में भारत में एक संस्कृति विकसित हुई है। इसमें से अपने समाज को समय, काल परिस्थिति और घटनाओं को देखने और उनका मूल्यांकन करने की एक विशिष्ट दृष्टि प्राप्त होती है। यह राष्ट्र की आत्मा होती है। इसे 'चिति' नाम दिया गया है।

Scanned with OKEN Scanner

जो काम समाज की चिति के अनुरूप होता है वह सारे समाज को अच्छा लगता है और जो काम चिति के विपरीत होता है, वह समाज को खराब लगता है। एक उदाहरण से इसको समझें। विभीषण ने अपने भाई को छोड़ा, और वह श्रीराम के साथ मिल गए। विभीषण के सहयोग से राव परास्त हुआ और श्रीराम लंका पर विजय प्राप्त कर सके। विभीषण का यह काम राष्ट्राकांक्षा और चिति के अनुरूप था। इसलिए विभीषण को कोई राजद्रोही नहीं कहता, उसे अच्छा मानते है,उसका आदर करते हैं।

भारत राष्ट्र का भी इस विश्व में एक विशिष्ट जीवनोद्देश्य है। यहां वह एकात्म दृष्टि प्राप्त हुई है–

1. जो मनुष्य को टुकड़ों मे नहीं अपितु मन–बुद्धि –शरीर–आत्मा का समुच्चय जानती है,
2. मनुष्य और समाज में परस्परानुकूलता व एक ही परम तत्व को सब में देखती है और,
3. मनुष्य और प्रकृति में परस्परावलम्बन देख कर प्रकृति केप्रति आदरभाव रखती है। उससे पोषण प्राप्त करती, उसका शोषण नहीं करती।

इस आधार पर चलने से मानस का समग्र विकास होगा, समाज सुखी होगा, प्रकृति स्वस्थ्य रहेगी और विश्व में शांति व आनन्द का साम्राज्य होगा।

इस जीवनोद्देश्य को सफल बनाने में सारा समाज लगेगा– तो राष्ट्र का विराट् जागेगा। तब भारत पुनः विश्वगुरू होगा और समाज पर वैभव सम्पन्न।

यह है 'राष्ट्र–पुरूष' संकल्पना।

च. **सृष्टि से एकात्मता** – इस भूमण्डल पर मानव के अतिरिक्त लाखों जीव प्रजातियों, उनके लिये आश्रय स्वरूप जमीन, जमीन की सतह पर मिट्टी की परत, जनसंसाधन, वायु, तापीय संतुलन, नीरवता एवं जीवन के लिये हमें अनेक आवश्यक मूर्त्त व अमूर्त परिस्थितियाँ विद्यमान है। पर्यावरण के इस पारिस्थितिकीय तंत्र के बीच अनवरत् संतुलन परम आवश्यक है। आज के कई प्रकार के प्रदूषण, तापीय प्रदूषण, बढ़ता शोर गुल, विकिरण धर्मी प्रदूषण आदि से समुद्र की बढ़ता जल स्तर, प्राकृतिक आपदाओं में वृद्धि, जीव प्रजातियों का विलोपन, जल स्रोतों में कमी जैसी समस्याओं को भी दृष्टिगत रखना आवश्यक है। निजी उपभोग में सृष्टि में समन्वय की दृष्टि से संयम भी एकात्म दृष्टि से ही सम्भव है। भावी पीढ़ियों के लिये संसाधन बचाना पर्यावरण के असहिष्णु प्रौद्योगिकी से दूरी रखना और जी.एम. फसलों जैसी हमारे कृषि जैव द्रव्य के लिये संकटकारी तकनीकों के प्रति भी संवेदनशीलता परमावश्यक है।

पर्यावरण में चैतन्यता के सूत्र सर्वत्र समान होने के कारण अस्तित्व का छोटे से छोटा

Scanned with OKEN Scanner

घटक भी दूसरे घटकों से संबंधित है व विश्व के कारोबार में उसका भी कुछ न कुछ काम है। अतः विश्व अर्थात् परस्पर संबद्ध परस्परावलम्बी छोटी–बड़ी रचनाओं में अन्तर्जाल (network) यह हिन्दू जीवनदृष्टि की धारणा हैं।

विविध रचनाओं में परस्परपूरक प्राकृतिक व जैविक संबंध के अनेक उदाहरण हमारे अनुभव में आते हैं।

1. तपमान हिम व सामुहिक जल के अनुपात में संतुलन व जल चक्र
2. जंगल, वर्षा व पानी का परस्पर संबंध
3. जैविक सन्तुलन कृषि में जैविक कीट नियन्त्रण
4. तितली/मधुमक्खी व वनस्पति सृष्टि का आपसी संबंध, यथा परानिषेचन में मधुमक्खी, तितली आदि की सहायता।
5. मनुष्य/जीवन सृष्टि–वनस्पति परस्पर संबंध कार्बन आक्साइड व आक्सीजन तथा नाइट्रोजन चक्र का जीवनसाथी लेन–देन।
6. हिमनद, जल चक्र एवं कृषि में अन्तर्सम्बन्ध

आज के बिगड़ते पर्यावरण सन्तुलन का विवेचन परिशिष्ट 3 में किया गया है।

छ. धर्म – धर्म शब्द का अर्थ समाजधारणा या समाज को धारित रखने के उपयुक्त वैश्विक नियमों के समूह से होता है। धर्म का कर्तव्य, आचार पद्धति, उसके अंगभूत गुणधर्म के अर्थों में प्रत्यक्ष व्यवहार में उल्लेख होता रहता है। अपनी दृष्टि में व्यक्तिगत व सामाजिक व्यवहार का नियामक तत्वसमूह ही धर्म है। धर्म का मतलब समाजघटकों का धारण। अर्थ के व्यवहार में भी धर्म सर्वोपरि है। धर्म का कर्तव्य व आचार के पालन रूप में राज्य से भी अधिक शाश्वत उपादेयता रही है। इस संबंध में याज्ञवल्क्य स्मृति का स्पष्ट मार्गदर्शन है। "अर्थशास्त्रांवतु बलवद् धर्मशास्त्रमिति स्थितिः" अर्थशास्त्र की अपेक्षा धर्मशास्त्र अधिक महत्व का है। वेदव्यास कहते है कि "धर्मादर्थश्च कामश्च स धर्म किं च सेव्यते" धर्म के संयोग से ही अर्थ व काम में सन्तुलन होता है, फिर धर्मपालन क्यों नहीं करते? अर्थ व काम मान्य है, उसका विरोध नहीं है, लेकिन ये सारे व्यवहार धर्म की मर्यादा में होने चाहिये। इस पर मनुस्मृति का कहना हैं "धर्मार्थकामाः समं एवं सेव्यकाः। य' एक सेवी स नरो जघन्यः" मनुष्य को धर्म, अर्थ तथा काम का संतुलित सेवन करना चाहिये, जो केवल एक के पीछे लगता है वह बहुत बड़ी भूल करता है। धर्म का अर्थ उपासना पंथ नहीं है। यह तो नैतिक व्यवहार के नियमों का समुच्चय है। ऐसी नैतिकता में धैर्य, क्षमा, दया, चोरी नहीं

Scanned with OKEN Scanner

करना, इन्द्रिय निग्रह, अन्तर्बाह्य की शुद्धता, सत्यवादिता, बुद्धिमत्ता, विद्याध्ययन, व क्रोध रहितता आदि 10 लक्षण धर्म के मनु स्मृति में बतलाये हैं।

हिन्दू समाज़जीवन आजीविका से युद्ध पर्यन्त धर्माधिष्ठित रहा है, जिसके कारण समाज परिवर्तन का कोई भी प्रयत्न करने के पीछें धर्मजीवन परिष्कृत करने का विचार अटल रहता है।

धर्म और तत्वज्ञान – अपनी संस्कृति के अनुसार पारमार्थिक साधना और प्रत्यक्ष जीवन व्यवहार में विरोध

3.4 समष्टि की एकात्मता – स्वयं को छोड़कर शेष जगत को समष्टि कहा जा सकता है। इसमें समाज समुदाय, राष्ट्र व राष्ट्र की जनता और समाज व राष्ट्र चिति, समाज के मूल्य, राष्ट्र का संविधान, हमारे आचार–विचार और नितिमतता ये सभी समष्टि का निर्माण करते है। व्यष्टि से समष्टि के सामंजस्य पर निम्न विवेचन उपयोगी है।

3.5 राष्ट्र व उसकी चिति – भारत एक प्राचीन सांस्कृतिक राष्ट्र है। हमारे अपने सभी सुख–दुखों की साझी अनुभूतियाँ हैं। इन साझी अनुभूतियों एवं हमारे श्रेष्ठ महापुरूषों के आचरण व उनकी दी शिक्षाओं के अनुकूल ही हमारी संस्कृति का निर्माण हुआ है। हमारी यह संस्कृति जिसके आधार पर हम सभी राष्ट्रजन उचित–अनुचित का निर्णय लेते हैं। वही उचित–अनुचित के बोध का आधार राष्ट्र की चिति कहलाती है। राष्ट्र के सभी निर्णय, निदान, नीतियां, विधान संविधान व लोक व्यवहार, राष्ट्र की चिति के अनुरूप होने पर ही राष्ट्र, उसकी चिति, शासन व्यवस्था व लोक व्यवहार में एकात्मकता स्थापित होती है।

3.6 राज्य – राज्य से आशय किसी एक शासन तंत्र के अधीन संचालित क्षेत्र व उसकी शासन व्यवस्था से है। वस्तुतः राष्ट्र की चिति से होने वाली वक्रतियों, अपराधों नियम विपरित व्यवहारों को ठीक करने एवं लोक व्यवहार को राज्य के विधान के अनुरूप संचालित करने के लिये राज्य अस्तित्व में आता है। किसी भी भू–राजनैतिक क्षेत्र की विकृति को ठीक करने व जटिलताओं का समाधान करने के लिए उत्पन्न होने वाले सामाजिक समझौतों में से राज्य का निर्माण होता है। राज्य वस्तुतः समाज, देश व राष्ट्रजनों के लिये होता है। अतएव राष्ट्र से राज्य सर्वोपरि नहीं हो सकता है। हमारा आदर्श राजधर्म के अनुरूप संचालित धर्मराज्य से है। लेकिन धर्म राज्य से अर्थ पांथिक राज्य नहीं है। भारत एक एकात्म राष्ट्र है, इसलिये संविधान संधात्मक नहीं, एकात्मक होना चाहिए। हमारी धर्म मर्यादा व राष्ट्र की चिति नीति संगत शासन ही अपेक्षित है। राज्य में सुव्यवस्था के लिये शासक की सम्यक दण्डनीति भी आवश्यक है यह उग्रदण्ड या क्षीणदण्ड आधारित नहीं, मृदुदण्ड व परिष्कारात्मक होनी चाहिए।

Scanned with OKEN Scanner

– राज्य देश के भू–सांस्कृतिक एकता पूर्ण समाज (राष्ट्र) का प्रतिनिधि है। राष्ट्र के लिए राज्य होता है, राज्य के लिए राष्ट्र नहीं होता। राजनीति भी धर्म व राष्ट्र के चिति के अनुरूप होनी चाहिये। राजनीति के लिए राष्ट्रीयता नहीं है। राष्ट्रीयता के पोषण के लिए राजनीति होनी चाहिए। वह राजनीति जो राष्ट्र को क्षीण करें, अवांछनीय है।

भारत का मूल चरित्र सत्ता – केन्द्रित एवं राज्य नियन्त्रित नहीं रहा है। वरन् वह समाज व उसकी संस्कृति पर केन्द्रित रहा है। किन्तु अब यह सत्ता की राजनीति पर केन्द्रित होता जा रहा है। यह समाज केन्द्रित एवं धर्म नियन्त्रित व संस्कृति का पोषक होना चाहिये। राष्ट्र व राज्य में अन्तर की दृष्टि से दूसरे विश्व युद्ध के बाद जर्मनी के विभाजन से वहां 2 राज्य पूर्वी जर्मनी व पश्चिमी बन गये, दोनों में पृथक–पृथक शासन था। लेकिन वहाँ एक राष्ट्र का भाव बना रहा परिणामतः साम्यवाद का पतन होते ही वह पुनः एक एकीकृत राज्य बन गया।

3.7 अर्थरचना में एकात्म दर्शन के सूत्र : व्यष्टि से समष्टि पर्यन्त अर्थ पुरूषार्थ अर्थात् अर्थ व्यवस्था के संचालन में एकात्मकता परम आवश्यक है आज की हमारी अधिकांश आर्थिक समस्याओं का कारण ही अर्थ व्यवस्था के संचालन में एकात्म दृष्टि का अभाव है। इस दृष्टि से निम्न बिन्दु विशेष विचारणीय है :–

(i) **समावेशी विकास के लिये विकेन्द्रित उत्पादन** – प्रक्रिया व आर्थिक प्रणाली–स्वदेशी व स्वावलंबन हेतु देश में कृषि, लघु उद्योग, ग्रामोद्योग की सहभागिता युक्त उत्पादन तत्र ही 125 करोड़ लोगों के योगेक्षेम की व्यवस्था कर सकता है। देश तीन चौथाई से अधिक जनसंख्या अनिगमित व अनौपचारिक अर्थ तत्र में नियोजित है। उसको दृष्टिगत रख कर आर्थिक नीतियाँ व प्रणाली का चयन आवश्यक है।

(ii) पारिस्थितिकीय संतुलन व पर्यावरण की मर्यादाओं के अनुसार पर्यावरण सहिष्णु उत्पादन, इस दृष्टि से रोजगार सृजनकारी प्रौद्योगिकी जो नवकरणीय (renewable) साधनों पर अवलम्बित हो उसके विकास पर बल देना। आज व्यष्टि व सृष्टि के बीच पर्यावरण संकटों पर एक लघु चर्चा परिशिष्ट 3 में की गयी है।

(iii) मूलभूत आवश्यकताओं (भोजन, समुचित पोषण, कपड़ा, मकान, रक्षा, शिक्षा व स्वास्थ्य) की सम्यक पूर्त्ति की सुविधाएँ।

(iv) धारणक्षम व संयमित उपभोग एवं भविष्य की आवश्कतओं के आलोक में उपभोग व उत्पादन तंत्र का विकास

(v) एकाधिकारी बाजार व अधिकतम लाभ केन्द्रित चिन्तन के स्थान पर समाज–हित

Scanned with OKEN Scanner

केन्द्रित अर्थचिन्तन–अर्थरचना में व्यक्ति को गरिमापूर्ण स्थान मिले। गला काट स्पर्द्धा के स्थान पर समावेशी उत्पादन व विकास तत्र की रचना

(vi) अर्थायाम – अर्थ का अभाव नहीं, अर्थ का प्रभाव भी नहीं होना चाहिये। अर्थ के उत्पादन, वितरण व भोग में संतुलन होना चाहिये।

(vii) विकेन्द्रित नियोजन – एक सौ पच्चीस करोड़ जनसंख्या वाले देश में साम्यवादी व्यवस्था के प्रतीक केन्द्रीकृत नियोजन से समावेशी (inclusive) विकास एवं धारणक्षम वृद्धि (sustainable growth) संभव नहीं है। इसलिये ग्राम व कस्बों में उपलब्ध संसाधनों व उनकी आवश्यकताओं के आधार पर विकेन्द्रित नियोजन ही श्रेयस्कर है।

(viii) कृषि में प्राकृतिक संतुलन के साथ सम्यक आधुनिकता – असंतुलित रासायनिक सघनता वाली कृषि में जहाँ पोषक तत्वों के असंतुलन से जहाँ भूमि बंजर हो रही है। वहीं कीटनाशकों के विवेकहीन दुरूपयोग और जी.एम. फसलों व जी.एम. खाद्य से स्वास्थ्य के लिये गम्भीर चुनौतियाँ उत्पन्न हो रही है। देश में पर्याप्त जल संसाधनों के होते हुए भी खेती युक्त जमीन का 1/3 क्षेत्र ही सिंचित है। कृषि में पर्याप्त सार्वजनिक निवेश के अभाव में कृषि उत्पादकता वैश्विक औसत की मात्र एक तिहाई है। इसलिये देश में बड़ी संख्या में किसान आत्महत्या कर रहे हैं, अतएव कृषि में उचित निवेश, सम्यक प्रौद्योगिकी एवं जैविक कृषि तकनीकों का उपयोग करते हुए प्राकृतिक संतुलन के साथ कृषि पर आधारित देश के आधे से अधिक जनसंख्या के समुचित योगक्षेम पर ध्यान देना चाहिये।

(ix) सम्यक आर्थिक संतुलन – बजट में बढ़ते राजकोषीय घाटे और विदेश व्यापार और चालु खाता घाटे पर पूर्व नियंत्रण किया जाना चाहिये।

(x) समन्वित कराधान – सभी प्रकार के करों (Taxes) की संरचना तर्कसंगत एवं विवेकपूर्ण होनी चाहिये।

(xi) उचित प्रौद्योगिकी का विकास – देश की आवश्यकताओं के अनुरूप स्वदेश में विकसित उत्पादों के निर्माण के लिये उचित प्रौद्योगिकी का विकास और अन्तर्राष्ट्रीय स्पर्धा के लिये अगली प्रौद्योगिकी का संवर्धन होना चाहिये।

(xii) स्वावलम्बी विकास – अर्थव्यवस्था विदेशी पूंजी पर निर्भर होने के स्थान पर आन्तरिक संसाधनों पर निर्भर होनी चाहिये।

(xiii) उचित आर्थिक नीतियाँ – देश की औद्योगिक व्यापार सम्बन्धी मौद्रिक,

Scanned with OKEN Scanner

राजकोषीय, वित्तीय सेवाओं और वित्तीय बाजारों से सम्बन्धित सारी आर्थिक नीतियाँ देश को स्वावलम्बी व प्रगत बनाने वाली होनी चाहिये।

(xiv) रोजगार – सम्पूर्ण अर्थतंत्र का संचालन प्रत्येक सक्षम व्यक्ति को रोजगार प्रदान करने वाला होना चाहिये, जिसमें स्वरोजगार और अधिकाधिक बल दिया जाना चाहिये।

(xv)अवसंरचनाओ व जनोपयोगी सेवाओं का समुचित विकास एवं उनकी सर्व सुलभता

(xvi) वैश्विक आर्थिक रचना – विश्व में विद्यमान सभी 200 से अधिक देशों की प्रजाओं की सभी आवश्यकताओं की पूर्ति उचित रूप से हो सके और बिना किसी एकाधिकारी शोषण के उनका योग क्षेम सुनिश्चित हो ऐसी आर्थिक रचनाओं का विकास। सभी अन्तर्राष्ट्रीय संस्थानों यथा UNO, WTO, IMF, World Bank, UPOV, IAEA आदि का संचालन भी एकात्म दर्शन के आधार पर होना चाहिए।

3.8 राष्ट्र, राष्ट्र की चिति, संविधान, विविध विधान और शासन व्यवस्था – नागरिकों को बिना किसी किसी भेदभाव के समान अधिकार, कर्तव्य व दायित्व युक्त ऐसा संविधान सुगम होना चाहिये। जो राष्ट्रीय संस्कृति और राष्ट्रीय चिति के अनुरूप हो। सभी कानून या विधान भी भेदभाव रहित होने चाहिये। विधानों की उचित पालना के लिये दक्ष व उत्तरदायी कार्यपालिका व प्रशासन तंत्र की आवश्यक है। संविधान, विधान एवं राष्ट्रीय चिति के अनुरूप द्रुत व सर्व सुलभ न्याय व्यवस्था की उतनी ही आवश्यक होती है।

3.9 अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध – सभी राष्ट्रों के मध्य समानता पूर्ण व्यवहार समस्त नागरिकों के लिये जीवन की उचित परिस्थितियों और भेदभाव तथा तनाव रहित वैश्विक सौहार्द का लक्ष्य।

3.10 परमेष्ठी – हम सभी जिस पृथ्वी पर निवास कहते है। पृथ्वी 30 किमी. प्रति सेकण्ड (1 लाख 8 हजार किमी प्रति घण्टा की गति से अपनी कक्षा में एक वर्ष में सूर्य की परिक्रमा करती है। सूर्य 7,65,000 किमी. प्रति घण्टा की गति से अपनी कक्षा में एक अति विशाल कृष्णविवर (Supermassive black Hole) की परिक्रमा करता है। इस आकाश गंगा में 7.65 लाख किमी. प्रति घण्टा की गति से सूर्य को अपनी कक्षा में एक परिक्रमा करने में 21 करोड़ 60 लाख वर्ष लगते है। हमारी सम्पूर्ण आकाश गंगा में अरबों तारे है, और इसका फैलाव लगभग एक लाख प्रकाश वर्ष के क्षेत्र में हैं। ऐसी अरबों आकाश गंगाएँ इस असीम अंतरिक्ष में फैली है। अब तक 12,000 अरब प्रकाश

Scanned with OKEN Scanner

वर्ष दूर तक आकाश गंगाओं का फैलाव चिन्हित किया जा चुका है। इस सम्पूर्ण अंतरिक्ष में और भी परे आकाश गंगाएँ, विविध लोन एवं जीव सृष्टियाँ हो सकती है। प्रकाश की गति 1,86,000 मील प्रति सेकण्ड की गति से इस आकाश गंगा को पार करने में 1 लाख वर्ष लग सकते है। इस प्रकार मन की गति से संपूर्ण ब्रम्हाण्ड में भ्रमण करने पर भी समस्त आकाश गंगाओं में विचरण सम्भव नहीं है। हमारे प्राचीन ग्रन्थों विशेषकर पुराणों के सर्ग अर्थात सृष्टि खण्ड में अति रामायण व महाभारत में, ब्रम्हाण्ड में इस प्रकार की आकाश गतिओं के विस्तार के वर्णन प्रचुरता से दिये हुए है। उनके अनुसार प्रत्येक ग्रह पिण्ड व सभी आकाश गंगाएँ भी ब्रम्हाण्ड में परिक्रमारत है। ब्रम्हाण्ड में आकाश गंगाओं का विलोपन इनके स्रोत ब्रम्हाण्डीय ऊर्जा से नयी–नयी आकाशगंगाओं का निर्माण भी अनवरत जारी है। प्रत्येक अणु से लेकर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड और जीव–प्राणियों के प्रत्येक कोशिक से लेकर प्रत्येक जीव के सम्पूर्ण शरीर व उसके तंत्रों में एक विलक्षण जटिलता के साथ परिपूर्ण समन्वय है। यह सब इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की नियामक सता या नियंता एक ही हो सकता है। इसलिये सभी मत पंथों में वर्णित परमात्मा ही इस अमीम, अनन्त, ब्रह्माण्ड का नियामक सता ओर उसकी शक्ति ही इसकी अधिष्ठात्री हो सकती है। ऐसे में मानव सृष्टि को मत पंथों में खण्ड–खण्ड देखकर पांथिक आतंक व जिहाद व क्रुजेड जैसे हिंसक अभियान उस ब्रह्म व उसकी अधिष्ठात्री शक्ति अर्थात परमात्मा के अनादर से छोड़कर कुछ भी नहीं कहा जा सकता है। इस सम्पूर्ण परमेष्ठी अर्थात् ब्रह्माण्ड व उसमें व्याप्त अरबों आकाश गंगाएं और इस विश्व की 720 करोड़ जनसंख्या सहित समस्त जीवधारी उस अखण्ड व अभेद विराट के अंग है। यही एकात्म मानव दर्शन है। और इस सबके साथ समन्वयकपूर्वक जीना ही एकात्म मानव दर्शन के अनुरूप जीना है। सभी वैश्विक व्यवस्थाओं का संचालन भी इसी एकात्म दृष्टि पूर्वक होना चाहिये।

3.11 आर्थिक रचना के लिये एकात्म दर्शन – आर्थिक एकात्मता के सूत्रों के बिन्दु क्रमांक 3.7 में विवेचन के उपरान्त भी हमारे प्राचीन आर्थिक चिन्तन व आज की आर्थिक समस्याओं और उनसे उबरने की एक सांकेतिक चर्चा भी यहाँ प्रस्तुत की जा रही है। इस खण्ड का अन्य विषयों के अनुपात में कुछ अधिक विस्तार हो रहा है। लेकिन लेखक को यह भी समीचीन प्रतीत होता है।

(i) विकास की भारतीय अवधारणा : विकास की भारतीय अवधारणा सर्व जन हिताय, सर्वजन सुखाय के अनुरूप 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' जैसे व्यापक कल्याण के उपनिषद वाक्यों के अनुरूप है। इसमें मानव मात्र के त्रिविध कष्टों से निवृत्ति के साथ उसके योगक्षेम में, इस प्रकार अभिवृद्धि का निर्देश है, कि सम्पूर्ण जीव सृष्टि व पर्यावरण में भी सुस्थिर सामंजस्य रहे। यहाँ मानव मात्र के त्रिविध कष्टों से अभिप्राय समस्त प्रजा को शारीरिक, दैविक

Scanned with OKEN Scanner

(प्रकृति या परिवेश जन्य) और भौतिक साधनों के अभाव जन्य कष्टों से मुक्ति से है, जो रामचरित मानस में इन शब्दों में व्यक्त है : "दैहिक दैविक भौतिक तापा राम राज काहूहि नहीं व्यापा"। योगक्षेम में योग से आशय है अप्राप्त की प्राप्ति (जो अबतक प्राप्त नहीं हुआ है उसकी प्राप्ति) एवं क्षेम का अर्थ है, जो प्राप्त हो गया, उसकी सुरक्षा। यहाँ पर योगक्षेम से आशय भी सम्पूर्ण समाज के न्यायोचित योगक्षेम से है। अमर्यादित उपभोग योगक्षेम नहीं कहा जा सकता है। जितने न्यूनतम वैयक्तिक उपभोग से विश्व के सभी व्यक्तियों की न्यायोचित भौतिक आवश्यकताओं की पूर्त्ति बिना जीव सृष्टि के अन्य घटकों को उद्वेग दिये सुदीर्घ काल तक चल सके वही विकास है। इसीलिये श्री मद्भागवत पुराण में कहा है कि "यावद्भ्रियेत जठरं तावत् स्वत्वं ही देहिनाम। अधिक योऽभिमन्येत स स्तेन दण्डंऽर्हति।।" अर्थात जितने उपभोग से व्यक्ति की उदर पूर्त्ति हो जाये या उसकी न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्त्ति हो जाये उतने पर ही उसका अधिकार है, उससे अधिक पर अपना अधिकार जताने वाला व्यक्ति चोर है, जो दण्डित किये जाने का पात्र होता है। इसी कारण दैनिक बलिवेश्वदेव में विधान है कि प्रत्येक व्यक्ति उसके द्वारा अर्जित संसाधनो (व उपभोग्य सामग्रियों)से चींटी जैसे क्षुद्र प्राणी, कौआ, कबूतर आदि पखेरूओं, गौ व श्वान सहित सभी चौपायों सहित अभ्यागतों (कुछ भी प्राप्ति की आशा से उसके पास आने वाले मनुष्यों) के अधिकतम पोषण व उनकी आवश्यकताओं की पूर्त्ति हेतु अपनी पूरी क्षमता से सहयोग करे। समाज की अपेक्षाओं की पूर्त्ति हेतु ही वेदों में उत्पादन में सभी प्रकार के अन्न धनादि प्रचुरताओं का निर्देश किया है। यथा "गोधूमाश्चमे, माषाश्चमे, तिलाश्चमे, मुद्गाश्चमे....."। अर्थात मेरे गेहुँ के भण्डार, उड़द के भण्डार, तिल के भण्डार, मूंग के भण्डार आदि सभी प्रकार के उत्पादकीय पदार्थों के उत्पादन व भण्डारों में प्रचुर वृद्धि होवे एवं होती रहे। ऐसे सभी प्रकार के कृषि पदार्थों ही नहीं वस्त्र, रत्न, धातु, यान, जलयान, आदि अनगिनत वस्तुओं की प्रचुरता के कई मंत्र वेदों में हैं।

इसी क्रम में आज की भांति अनेक स्थानों पर पूंजी निवेश कर व्यवसाय कर लाभार्जन के भी अनेक मंत्र है। व्यवसाय के यह अभिवृद्धि दस गुने से अरबों गुने तक होने की कामना की गयी है। यथा' इमामे वेदों में अन्य बातों के साथ–साथ अत्यन्त समुन्नत व्यापार, वाणिज्य व उद्योगों के व्यवस्थित संचालन का विषद वर्णन है। प्राचीन काल में सम्भवतः व्यवसाय आज से भी अधिक उन्नत रहा है, इसलिये धन के लिये शब्दावली की दृष्टि से आज की तुलना में कहीं अधिक 60–70 प्रकार के धन व पूंजी के वर्णन है। ऋग्वेद में सौ चप्पुओं वाले जलयान से व्यापारिक यात्राओं से लेकर सहस्त्र खम्भों के भवनों के भी उल्लेख आदि अति प्राचीन काल में भी हमारे यहाँ उन्नत व वृहद स्तरीय व्यापार, वाणिज्य व उद्योगों के प्रमाण प्रचुरता में उद्धृत है।

विकेन्द्रित उत्पादन व पूर्ण रोजगार का निर्देश : हमारे प्राचीन शास्त्रों में ऐसे संसाधन

Scanned with OKEN Scanner

जिनका नवीनीकरण या पुनर्जनन सम्भव नहीं है उनका अत्यन्त मर्यादित उपयोग के निर्देश है। वेदों में विकेन्द्रित उत्पादन व सबको रोजगार के अवसर ऐसी पूंजी से अधिकांश परिवार स्वावलम्बी हो यह अपेक्षा ऋग्वेद, अथर्ववेद व कई नीति ग्रन्थों में है। इसीलिये ऋग्वेद में परिवार की उत्पादकीय सम्पत्ति को पूंजी कहा गया है। साथ ही यह भी कहा गया है कि, किसी भी परिवार को उसकी उस पूंजी से किसी भी स्थिति में वंचित नहीं किया जाय। इसका उद्देश्य था कि राज्य में विकेन्द्रित उत्पादन से अधिकांश परिवारों को स्व–रोजगार सुलभ हो सके।

विकास के भारतीय अर्थ चिन्तन में व्यापक रोजगार को प्राधान्यता दिये जाने के कारण ही अर्थ शास्त्र की चाणक्य की अर्थशास्त्र की परिभाषा आज भी सर्वाधिक उपयुक्त सिद्ध होती है। चाणक्य के रचित कौटिल्य अर्थशास्त्र के अनुसार मनुष्य मात्र अर्थात सभी प्रजाजनों को जीवन वृत्ति प्रदान करने के शास्त्र को ही अर्थशास्त्र कहा है। चाहे स्व रोजगार हो या कोई व्यक्ति कहीं भी भृत्ति अर्थात वेतन या मजदूरी के बदले सेवा दे, उसकी भृत्ति अर्थात मजदूरी या वेतन इतना होना अपेक्षित है कि उस पर आश्रित सभी परिवारजनों का भरण पोषण हो सके। यथा "अवश्यपोष्य भरणं भृत्तिकाद्भवेत" याज्ञवल्क्य स्मृति के अनुसार व्यक्ति को इतना पारिश्रमिक प्रदान करना ही चाहिये कि वह उस पर अवलम्बित उसके सभी परिवारजनों का पोषण कर सके। हिन्दु अर्थ चिन्तन में आज के अर्थशास्त्र के सभी अंगो यथा उपभोग, उत्पादन, मूल्य, आय, किराया व लोकावित्त आदि का सांगोपांग एवं अत्यन्त समन्वित विवेचन है। मांग व पूर्त्ति के अनुरूप मूल्यों मे उतार चढ़ाव से लेकर मूल्य नियन्त्रण हेतु पण्य विचक्षणा जैसे 'मूल्य निर्धारण मण्डल' तक की व्यवस्थाओं के साथ–साथ करारोपण के सिद्धान्तों का भी समुचित विवेचन हमारे प्राचीन ग्रन्थों में मिल जाता है।

यथा शुक्र नीति में करारोपण के सिद्धान्तों के रूप में कहा है कि जिस प्रकार मधुमक्खी द्वारा पुष्पों से पराग एकत्र करने पर पुष्प को कोई पीड़ा नही होती उसी प्रकार राजा को भी कर संग्रह इस प्रकार करना चाहिये की प्रजा को कर चुकाने में कष्ट नहीं हो।

वस्तुतः स्वाधीनता के तत्काल बाद तत्कालीन साम्यवादी सोवियत संघ के दबाव में प्रथम प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू एवं उनकी पुत्री व तीसरी प्रधानमंत्री इन्दिरा गाँधी द्वारा अपनायी समाजवादी नीतियों से देश की सहज विकास की गति ही अवरूद्ध हो गयी।

(ii) आज की पराभवकारी नीतियाँ – उसके बाद अचानक 1991 में आर्थिक उदारीकरण के नाम पर विगत 23 वर्षों में आर्थिक सुधारों के अन्तर्गत, आयातों में उदारीकरण से जहाँ देश,विदेशों से आयातित वस्तुओं के बाजार में बदलता चला गया

Scanned with OKEN Scanner

है, वहीं विदेशी प्रत्यक्ष निवेश ;थ्क्प्द्ध को प्रोत्साहन देते चले जाने से देश के सगंठित क्षैत्र.के उत्पादन तंत्र के दो तिहाई पर विदेशी कम्पनियों का स्वामित्व व नियन्त्रण हो गया है। इसी प्रकार देश के वित्तीय बाजार भी आज विदेशी संस्थागत निवेशकों (FDI) के ही नियन्त्रण में जाने के मार्ग पर चल रहे हैं। बोम्बे स्टाक एक्सचेंज पर सूचीबद्ध शीर्ष 500 स्वतंत्र (BSE 500) कम्पनियों में उनके प्रवर्तकों के अंशों को छोड़ कर स्वतंत्र क्रय–विक्रय हेतु उपलब्ध शेयरों के 42 प्रतिशत पर आज विदेशी सस्थागत निवेशकों का ही नियन्त्रण हो गया है। हिन्दु अर्थव चिन्तन हमारी आर्थिक गलतियों, विगत 23 वर्षों के आर्थिक सुधारों के दुष्परिणामों और उनके परिष्कार की रीति–नीति का एक संक्षिप्त विवेचन परिशिष्ट 2 में किया हैं।

(iii) स्वावलम्बन हेतु स्वदेशी भाव से भारत द्वारा विकसित उत्पादों की प्रासंगिकता : आज जब देश में शीतल पेय व जूते के पालिश से लेकर टी.वी., फ्रीज समेत सीमेण्ट पर्यन्त अधिकांश उत्पादों का उत्पादन विदेशी कम्पनियाँ उनके ब्राण्ड के अधीन ही कर रही हैं। ऐसी दशा में और अधिक विदेशी निवेश आकर्षित कर उन्हें देश में उत्पादन सुविधायें प्रदान कर 'मेक इन इण्डिया' की सुविधा प्रदान करने से स्वावलम्बी आर्थिक विकास सम्भव नहीं हो सकेगा। आज आवश्यकता इस बात की है कि स्वदेशी भाव जागरण व आर्थिक राष्ट्र निष्ठापूर्वक देश में उत्पादों व ब्राण्डों का विकास कर उनके उत्पादन, विपणन व निर्यात संवर्द्धन हो। विश्व भर में ''मेड बाई इण्डिया'' वस्तुओं व सेवाओं के प्रवर्तन व संवर्द्धन की अत्याधिक आवश्यकता है। भारतीय उद्यम व भारतीय उद्यमी अपने उत्पादों व ब्राण्डों को विश्व में प्रतिष्ठापित कर सकें इस हेतु नीतिगत पहल का किया जाना परम आवश्यक है। इसी के साथ उत्पादन व नियोजन में विकेन्द्रीकरण से ही हर हाथ को काम व हम मनुष्य के योगक्षेम की लक्ष्य प्राप्त करना सम्भव है।

इसलिये देश को स्वदेशी के संकल्प के साथ स्वालम्बन व विकास के मार्ग पर अग्रसर करने हेतु तकनीकी राष्ट्रवाद का अवलम्बन लेते हुए हमें सभी प्रकार की वस्तुओं व सेवाओं के अपने ब्राण्ड विकसित करने चाहिए और देश–विदेश में उनका चलन बढ़ाने हेतु सर्वप्रथम देश में आम व्यक्ति में स्वदेशी भाव जागरण आवश्यक है। ''मेड बाई इण्डिया'' की दृष्टि से जहाँ देश के उद्योगों को उद्यम बन्दी से बचाने के साथ–साथ विदेशी अधिग्रहणों से बचाना है। देश में उत्पाद व ब्राण्ड विकसित करने हेतु चीन की भाँति तकनीकी राष्ट्रवाद; यूरो. अमरीकी देशों की तरह उद्योग सहायता संघों के विकास; सहकारी अनुसंधान के मानक संवर्द्धन; वैकल्पिक उत्पाद विकास के लिये मितव्ययी ;तिनहंस म्दहपदममतपदहद्ध इंन्जिनीयरिंग के विकास, विदेशों में भारत के ब्राण्ड, उत्पाद, सेवा उत्पाद व उपक्रम अधिग्रहण आदि पर हमारी दृष्टि होनी चाहिये।

Scanned with OKEN Scanner

एकात्म मानव दर्शन - सारांश

अ. पृष्ठभूमि व आवश्यकता :

1. विगत एक हजार वर्षों में अनेक बाहरी आक्रमणों से देश की अर्थव्यवस्था समाज रचना व संस्कृति पर अनेक आघात
2. स्वतंत्रता आन्दोलन में अंग्रेजी सत्ता के अनुकूलन पर ही देश का सम्पूर्ण ध्यान
3. स्वाधीनता के उपरान्त युरो–अमेरिकी और सोवियत संघ के साम्यवादी दबाव में मिश्रित अर्थव्यवस्था और आर्थिक प्रतिबन्धतात्मक व साम्प्रादायिक विभैद पर राजनीति का आघात, शासन व्यवस्था का विकास।
4. देश की संस्कृति, जीवन रचना और सामुहिक चिति से परै राजनैतिक गठजोड़ अवसरवादिता एवं भ्रष्टाचार में डुबती व्यवस्थायें
5. वर्ष 1991 से बाजार वाद के नाम पर आयात व विदेशी पुंजी आधारित, आर्थिक परतंत्रता कारक नीतियाँ
6. प्रतिक्रिया व संघर्ष से उपजा पाश्चात्य देशों का समाज पर प्रभाव .....
7. पांथिक आक्रमणों से उपजें अरब राज्य .....
8. हिंसक संघर्षों से सत्ता प्राप्ति के मार्ग के रूप में साम्यवाद का उभार
9. देश के स्वाधीनता के सत्रह वर्ष उपरान्त ही गरीबी, बेरोजगारी, भ्रष्टाचार, आर्थिक पिछड़ापन, राजनैतिक, अवसरवादिता आदि की समस्या। (उपरोक्त परिस्थितियों के स्वराष्ट्र व वृक्षोप की स्थित में भारत के शास्वत व सनातन चिन्तन के आधार पर स्व. पं. दीनदयाल उपाध्याय द्वारा एकात्म मानव दर्शन का 1964 में प्रतिपादन)
10. एकात्म मानव दर्शन के प्रतिपादन के समय की देश के शासन तंत्र की स्व. पं. दीन दयाल जी द्वारा इंगित कमियाँ व कमजोरियाँ
    (1) अन्य देशों की नकल
    (2) प्रतिक्रिया व संघर्ष की पृष्ठभूमि में उपजे राज्यों की नकल
    (3) एकांकी व खण्ड–खण्ड विचार
    (4) भौतिकता वादी अनियन्त्रण उपभोग को बढ़ावा देने वाले भू–प्रतिकोष्ठ
    (5) देय की संस्कृति जन भावनाओं एवं राष्ट्रीय चिति से असंबंध शासन व नियमात्मक

Scanned with OKEN Scanner

(6) साम्प्रदायिक विभेदकारी नितियाँ

(7) परस्पर विरोधी विचारों का गठजोड़

ब. एकात्म मानव दर्शन के प्रतिपादन के उपरान्त वर्ष 1991 में आर्थिक परावलम्बनकारी नीतियाँ

1. आयात उदारता के कारण देश का विदेशी वस्तुओं का बाजार में बदल जाना और उसके कारण बड़ी मात्रा में उद्यमबन्दी
2. विदेशी निवेश प्रोत्साहन के कारण देश के उत्पादन तंत्र पर विदेशी कम्पनियों का नियंत्रण। व्यापार, वाणिज्य, कृषि अवसंरचनाओं व जन उपयोगी संरचनाओं पर भी विदेशी कम्पनियों का निवेश।
3. रक्षा तैयारियों के शिथिलता के कारण अशान्त सीमायें साम्प्रदायिक तृष्टिकरण, भ्रष्टाचार, घुसपैठ आदि।

स. एकात्म मानव दर्शन के प्रमुख तत्व : इस अध्याय में वर्णित भारतीय संस्कृति के मूलभूत तत्वों और शाश्वत हिन्दु चिन्तन पर आधारित एकात्म मानव दर्शन के प्रमुख तत्व अग्रानुसार हैं :

1. समग्र चिन्तन पर आधारित एकात्म दृष्टि।
2. स्पर्द्धा के स्थान पर पारस्परिक सहकार व सामंजस्य।
3. एकात्म विश्व दृष्टि ।
4. व्यक्ति, प्रकृति, सृष्टि व समष्टि में सामंजस्य ।
5. एकात्म व परिपूर्ण मानव – शरीर, मन, बुद्धि व आत्मा के बीच समन्वय। केवल शारीरिक सुखों के स्थान पर उच्च मानवीय चेतना के विकास पर बल।
6. व्यक्ति के जीवन लक्ष्य : चतुर्विध पुरूषार्थों अर्थात् अर्थ, काम, धर्म व मोक्ष के लिए समन्वित चिन्तन व प्रयत्न।
7. परिवार चिन्तन : पश्चिमी देशों एवं कम्यूनिस्ट चिन्तन में भी अबोध वैयक्तिक स्वतंत्रता के लिये पारिवारिक सम्बन्ध शिथिल हो रहे हैं। जबकि समष्टि बोध व समष्टि के प्रति उत्तरदायित्व के सहकार सर्व प्रथम परिवार में ही मिलते है। इसके लिये पारिवारिक मूल्यों व संवेदनाओं के चतुर्विध पुरूषार्थों अर्थात काम, अर्थ, धन व मोक्ष में समान्वित एकत्व आवश्यक है। आज परिवार संस्था पर जिस प्रकार के नियोजित आघात हो रहे हैं उन का प्रतिकार भी महत्वपूर्ण है।

Scanned with OKEN Scanner

8. अर्थायाम या राष्ट्र के लिए अर्थ चिन्तन के क्रम में स्व. पं. दीनदयाल जी के शब्दों में राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के निम्न उद्देश्य होने चाहिये।

i. प्रत्येक व्यक्ति को न्यूनतम जीवन–स्तर की आश्वस्ति तथा राष्ट्र के सुरक्षा–सामर्थ्य की व्यवस्था।

ii. इस स्तर के उपरान्त उत्तरात्तर समृद्धि, जिससे व्यक्ति और राष्ट्रों को वे साधन उपलब्ध हो सकें, जिनसे वे अपनी चिति के आधार पर विश्व की प्रगति में योगदान कर सकें।

iii. उपर्युक्त लक्ष्यों की सिद्धि के लिए प्रत्येक वयस्क एवं स्वस्थ व्यक्ति को साभिप्राय आजीविका का अवसर देना, तथा प्रकृति के साधनों का मितव्यधिता के साथ उपयोग करना।

iv. राष्ट्र के उत्पादक–उत्पादनों का विचार कर अनुकूल प्रौद्योगिकी का विकास करना।

v. यह व्यवस्था मानव की अवेहलना न कर उसके विकास में साधक हो तथा समाज के सांस्कृतिक एवं अन्य जीवन–मूल्यों की रक्षा करें। यह लक्ष्मणरेखा है, जिसका अतिक्रमण अर्थ रचना किसी भी परिस्थिति में नहीं कर सकती।

vi. विभिन्न उद्योगों आदि में राज्य, व्यक्ति तथा अन्य संस्थाओं के स्वामित्व का निर्णय व्यावहारिक आधार पर हो।

9. **व्यष्टि व समष्टि के बीच सामंजस्य** – व्यक्ति परिवार, समाज, समुदाय, राष्ट्र, विश्व, सृष्टि समष्टि व परमेष्टि के बीच सामंजस्य व उनकी एकरूपता

10. **व्यक्ति व समाज** : स्वस्थ समाज के उच्च आदर्श एवं मानवोचित जीवन मूल्य होते हैं। समाज के चतुर्विध पुरूषार्थों यथा अर्थ, काम, धर्म व मोक्ष में एकत्व ही समरूप चिति और राष्ट्रबोध की संस्कृति का आधार होता है। उच्च सामाजिक गरिमा भी राष्ट्र भाव के जागरण में सहयोगी होती है।

11. **समष्टि के पुरूषार्थ** : समष्टि में आर्थिक समता, जनता की आवश्यकताओं की पूर्ति, उचित वातावरण, सब प्रकार की सुरक्षा पूर्वक धर्म पालन की प्रेरणा आदि महत्वपूर्ण है। पर्यावरण चेतना भी महत्वपूर्ण है।

12. **परमेष्ठी से एकत्व :**

Scanned with OKEN Scanner

परिशिष्ट–1

भारतीय हिन्दू वांगमय में, राष्ट्र की अवधारणा, उसकी प्राचीनता एवं परिपूर्णता

1.1 राष्ट्र की भारतीय अवधारणा

भारत में राष्ट्र की अवधारणा अति प्राचीन है। मानव के सार्वभौम कल्याण की प्रेरणा से एक साझी सांस्कृतिक विरासत के संवाहक के रूप में, तेज व आज से युक्त एक साझे समाज–जीवन को अविरल बनाये रखने के भाव से राष्ट्र की अवधारणा वेदिक काल से ही प्रचलित रही है। यथा :–

भद्रं इच्छन्त ऋषयः स्वर्विदः तपो दीक्षां उपसेदुः अग्रे।

ततो राष्टं बलं ओजश्च जातम्। तदस्मै देवा उपसं नमन्तु ।।

(अथर्व. 19/41/1)

"आत्मज्ञानी ऋषियों ने जगत का कल्याण करने की इच्छा से सृष्टि के प्रारम्भ में जो दीक्षा लेकर तप किया, उससे राष्ट्रनिर्माण हुआ, राष्ट्रीय बल और ओज भी प्रकट हुआ। इसलिए सब प्रबुद्धजन इस राष्ट्र के सामने नम्र होकर इसकी सेवा करें।"

लेकिन राष्ट्र कहलाने की पात्रता के लिये विद्वज्जनों की विचारवान व लोकतांत्रिक सभा/समिति/पंचायतों आदि में सामूहिक निर्णय परम्परा के साथ आत्म रक्षार्थ समुचित बल समाज के संरक्षण व योगक्षेमं में सक्षमता के लिये भी आवश्यक है। यथा यजुर्वेद का मंत्र 22–22

आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामा राष्ट्रे राजन्यः षरऽइशव्योऽतिव्याधी महारथो जायतां दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योशा जिष्णू रथेष्ठा सभेयो युवास्या यजमानस्य वीरो जायतां, निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्योनऽओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम्।।

इस सूक्त के अनुसार जन–समूह, जो एक सुनिश्चित भूमिखण्ड में रहता है, संसार में व्याप्त और इसको चलाने वाले परमात्मा अथवा प्रकृति के अस्तित्व को स्वीकार करता है, बुद्धि को प्राथमिकता देता है और विद्वज्जनों का आदर करता है, और जिसके पास अपने देश को बाहरी आक्रमण और आन्तरिक, प्राकृतिक आपत्तियों से बचाने और सभी के योगक्षेम की क्षमता हो, वह एक राष्ट्र है।

उपरोक्त सभी उद्धरणों के अनुसार भारत अनादि काल से एक सांस्कृतिक राष्ट्र रहा है। महाभारत कालीन सभी राजें की संस्कृति राज्य संहिताएँ समान रही है। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में समस्त भारत के राज्यों ने एक समेकित राष्ट्र के अंगभूत राज्यों के रूप

Scanned with OKEN Scanner

में भाग लिया है।

1.2 भारत की सांस्कृतिक एकता व उसका परिक्षेत्र

उत्तर में हिमालय से दक्षिण में हिन्द महासागर के बीच के क्षेत्र में पूर्व में इण्डोनेशिया से पश्चिम में ईरान पर्यन्त, भारत की पौराणिक सीमाओं के मध्य एक साझी सांस्कृतिक विरासत के प्रमाण आज भी प्रचुरता से विद्यमान हैं। अतएव सुदीर्घकाल तक, दक्षिण–पूर्व एशिया से ईरान पर्यन्त यह देश एक सांस्कृतिक राष्ट्र के रूप में रहा है।

इसके अनुसार समुद्र के उत्तर और हिमालय के दक्षिण का सारा भू–भाग जिसमें भारत की सन्तति निवास करती है, भारतवर्ष देश हे –

उत्तरं यत् समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणाम्।

वर्ष तत् भारतं नाम भारती यत्र संततिः।।

लगभग उसी समय लिखे गए वायुपुराण में, इस भारत देश के विस्तार तथा लम्बाई–चौड़ाई का भी स्पश्ट उल्लेख है। इसके अनुसार गंगा के स्त्रोत से कन्याकुमारी तक इस देश की लम्बाई एक हजार योजन है –

योजनानां सहस्त्रं द्वीपोऽयं दक्षिणोत्तरम्।

टायतो हि कुमारिक्याद् गंगा प्रभवाच्च यः।।

स्वर्गीय डा. राधाकृष्णन् ने 1965 में गणतन्त्र दिवस के अवसर पर राष्ट्र के नाम प्रसारित अपने भाषण में हिन्दुस्तान नाम के सम्बन्ध में एक श्लोक कहा था, वह निम्नोक्त है–

हिमालयं समारभ्य यावदिन्दू सरोवरम्।

हिन्दुस्थानमिति ख्यातमान्द्यन्ताक्षरयोगतः।।

यह श्लोक कुलार्णव तन्त्र का है। इसके अनुसार हिमालय और इन्दु सरोवर (कन्याकुमारी) नामों के मेल से हिन्दुस्तान नाम बना है।

1.3 पृथ्वी से समुद्र पर्यन्त एक राष्ट्र व उसमें भिन्न–भिन्न शासन प्रणालियों से युक्त राज्य

समस्त भू–मण्डल पर एक समेकित संस्कृति की दृष्टि से ईरान से भी परे यूरोप के लगभग सभी प्राचीन पुरातात्विक उत्खननों मे सूर्य देवता के अवशेषों की प्राप्ति, सिन्धुघाटी सभ्यता की लिपि व चित्रित पशुओं आदि के तत्सम जीवों का लेटिन अमेरिका तक में होने जैसे अनेक प्रमाण, विश्व भर में एक साझी संस्कृति से युक्त एकात्म राष्ट्र की

Scanned with OKEN Scanner

वेदिक उक्ति "पृथिव्याये समुद्र पर्यन्ताया एक राडतीति" जिसका अर्थ है 'पृथ्वी से समुद्र पर्यन्त यह भूमण्डल एक राष्ट्र को चरितार्थ करती है। राष्ट्र की यह अवधारणा राज्यों की भौगोलिक या भू–राजनैतिक सीमाओं से परे रही है। समान धर्म मर्यादाओं अर्थात् शाश्वत कर्त्तव्यपथ को निर्देशित करने वाले एकात्म संस्कृति से युक्त राष्ट्र के अन्तर्गत विविध शासन प्रणालियों के अनुमामी राज्यों से आवेशिठत होने पर भी, यह समग्र भू–मण्डल अति प्राचीन काल से एक एकात्म राष्ट्र के रूप में देखा जाता रहा है, यथा

ऊँ स्वस्ति साम्राज्यं भौज्यं स्वाराज्यं वैराज्यं पारमेष्ठ्यं राज्यं माहाराज्यमाधिपत्यमयं संमतपर्यायी

स्यात्सार्वभौमः सार्वायुष आंतादापरार्धात्पृथिव्यै समुद्रपर्यताया एकराडिति।।3।।

तदप्येशः श्लोकोऽभिगीतो। मरूतः परिवेष्टारो मरूत्तस्यावसन् गृहे। आविक्षितस्य कामप्रेर्विश्वे देवाः सभासद इति।।4।।

उक्त मन्त्र में एक सार्वभौम राष्ट्र के अन्तर्गत भिन्न–भिन्न भू–राजनेतिक क्षेत्रों में भिन्न–भिन्न शासन प्रणालियों से युक्त राज्यों के सन्दर्भ हैं। इन राज्यों का संक्षिप्त परिचय देना भी यहाँ समीचीन होगा।

उक्त श्लोकान्तर्गत आने वाली शासन प्रणालियाँ :

ऐतरेय ब्राह्मण की अष्टम पंचिका में विविध शासन–प्रणालियों का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। साथ ही इनके शासकों के नाम भी दिए गए हैं। यह भी उल्लेख है कि ये प्रणालियाँ कहाँ प्रचलित थी।2 ये प्रणालियाँ हैं –

1. साम्राज्य – इस प्रणाली के शासक को 'सम्राट्' कहते थे। यह प्रणाली पूर्व दिशा के राज्यों (मगध, कलिंग, बंग आदि) में प्रचलित थी।3 सम्राट् एकछत्र अधिकारी होता था।

2. भौज्य – इस प्रणाली के भासक को 'भोज' कहते थे। यह प्रणाली दक्षिण दिशा के सत्वत् (यादव) राज्यों में प्रचलित थी। अन्धक और वृष्णि यादव–गणराज्य इस श्रेणी में आते हें। इस शासन–प्रणाली में जनहित और लोक–कल्याण की भावना अधिक रहती थी, अतः यह पद्धति अधिक लोकप्रिय हुई।

3. स्वाराज्य – इस प्रणाली के भासक को 'स्वराट्' कहते थे। यह प्रणाली पश्चिम दिशा के (सुराष्ट्र, कच्छ, सौवीर आदि) राज्यों में प्रचलित थी। यह स्वराज्य या स्वशासित (Self-ruling) प्रणाली है। राजा स्वतंत्र रूप से शासन करता है।

4. वैराज्य – इस प्रणाली के शासक को 'विराट्' कहते थे। यह प्रणाली हिमालय के उत्तरी

Scanned with OKEN Scanner

भाग उत्तर कुरू, उत्तर मद्र आदि राज्यों में प्रचलित थी। यह शासन–प्रणाली जनतंत्रात्मक या संघ शासन–प्रणाली है। इसमें प्रशासन का उत्तरदायित्व व्यक्ति पर न होकर समूह पर होता हैं।

5. पारमेष्ठ्य – इस प्रणाली के शासक को 'परमेष्ठी' कहते थे। महाभारत शान्तिपर्व और सभापर्व में इसका विस्तार से वर्णन हुआ है।4 यह गणतंत्र–पद्धति है। इसकी मुख्य विशेषता है – प्रजा में भाान्ति–व्यवस्था की स्थापना। इसमें सभी को समान अधिकार प्राप्त होता है। गणमुख्य योग्यता और गुणों के आधार पर होता है।5

6. राज्य – इस प्रणाली में राज्य का उच्चतम शासक 'राजा' होता था। यह प्रणाली मध्यदेश में कुरू, पंचाल, उशीनर आदि राज्यों प्रचलित थी। राजा की सहायता के लिए मंत्रियों की परिषद् होती थी। शासनतंत्र के संचालन के लिए विभिन्न अधिकारियों की नियुक्ति होती थी।1

7. महाराज्य – इस प्रणाली के प्रशासक को 'महाराज' कहते थे। यह राज्य पद्धति का उच्चतर रूप है। किसी प्रबल शत्रु पर विजय प्राप्त करने पर उसे 'महाराज' उपाधि दी जाती थी।

8. आधिपत्य समन्तपर्यायी – इस प्रणाली से प्रशासक को 'अधिपति' कहते थे। इस प्रणाली को 'समन्तपर्यायी' कहा गया है। वह पड़ौसी जनपदों को अपने वश में कर लेता था तथा उनसे कर वसूल करता था। छान्दोग्य उपनिषद् में इस प्रणाली को श्रेष्ठ बताया है।2

9. सार्वभौम – इस प्रणाली के प्रशासक को 'एकराट्' कहते थे। ऐतरेय ब्राह्मण में इसका उल्लेख है।3 यह सारी भूमि का राजा होता था। इस प्रणाली को 'सार्वभौम प्रभुत्व' नाम दिया गया है।

10. जनराज्य या जानराज्य – यजुर्वेद, तैत्तिरीय संहिता और शतपथ ब्राह्मण आदि में 'महते जानराज्याय' महान् जनराज्य का उल्लेख है।4 इससे ज्ञात होता है कि राजा का अभिषेक 'जनतंत्रात्मक प्रशासन' के लिए होता था। इसके प्रशासक को 'जनराजा' कहा जाता था।

11. अधिराज्य – ऋग्वेद और अथर्ववेद में इसका उल्लेख हे।6 इसके प्रशासक को 'अधिराज' कहते थे। इस प्रणाली में 'उग्रं चेत्तरम्' अर्थात् राजा उग्र और कठोर अनुशासन रखता था। राजा निरंकुशता का रूप ले लेता होगा, अतः यह प्रणाली आगे लुप्त हो गई।

12. विप्रराज्य – ऋग्वेद और अथर्ववेद में विप्रराज्य का वर्णन है।7 इसमें यज्ञ, कर्मकाण्ड पर विशेष बल था। सम्भवतः एकांगी विचारधारा और पाखण्ड के विस्तार के कारण यह प्रणाली आगे नहीं चली।

Scanned with OKEN Scanner

13. समर्यराज्य – ऋग्वेद में समर्यराज्य का उललेख है।1 समर्य का अर्थ है – सम्–श्रेष्ठ या संपन्न, अर्य–वैश्य। यह धनाढ्यों का राज्य था। इसमें व्यापार में उन्नति, धन–धान्य की समृद्धि और सैन्यशक्ति की वृद्धि का उल्लेख है। संभवतः प्रजा–शोषण के कारण यह पद्धति लोकप्रिय नहीं हुई और लुप्त हो गई।

1. साम्राज्याय, शौज्याय, स्वाराज्याय, वैराज्याय, पारमेष्ठ्याय, राज्याय, माहाराज्याय, आधिपत्याय, श्वावश्याय, आतिष्ठाय अभिशिञ्वति। ऐत. ब्रा. 8.4.18
2. प्राच्यां दिशि ये के च प्राच्यानां राजानः साम्राज्यावैव तेऽभिशिच्यन्ते. इत्यादि। ऐत. बा. 8.3.14
3. विस्तृत विवेचन के लिए देखें, लेखककृत, 'वेदों में राजनीतिशास्त्र', पृष्ठ 157 से 174
4. महाभारत शान्तिपर्व 107.10 से 32। सभापर्व 14.2 से 6
5. विशेष विवरण के लिए देखें, डॉ. काशीप्रसाद जायसवाल कृत Hindu Polity.
6. द्रष्टव्य, डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल, पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ. 389–400
7. स हि ज्येष्ठा श्रेष्ठो राजाऽधिपतिः। छा. उप. 5.2.6
8. सार्वभौमः..... एकराट्। ऐत. 8.15
9. महते जानराज्याय। यजु. 9.40। तैत्ति. सं. 1.8.1.2

   महते जनानां राज्याय। भात. 5.3.3.12
10. त्वमेतान् जनराज्ञो द्विर्दशा.। ऋग्. 1.53.9
11. डग्रं चेत्तारम् अधिराजम् अक्रन्। ऋग्. 10.128.9। अ. 5.3.10
12. भावो यज्ञेशु विप्रराज्ये। ऋग्. 8.3.4 ।अ. 20.104.2
13. अनु हि त्वा सुतं सोम मदामसि, महे समर्यराज्ये। ऋग्. 9.110.2

वेदिक काल में राष्ट्रान्तर्गत चुनावों की परम्परा

वेदिक काल में आज की भाँति चुनाव एवं चुने हुये राष्ट्राधिपति को पदमुक्त किये जाने के भी पर्याप्त सन्दर्भ हैं। भारत में चुनावों की परम्परा अति प्राचीन है। ऋग्वेद के मंत्र क्रमांक 10–173–1 के अनुसार वैदिक युग में भी देश में राष्ट्र के अधिपति के चुनाव होते रहे हैं। इसी मंत्र में इस चुने हुए राश्ट्राधिपति से शासन में स्थायित्व के साथ जनप्रिय बने रहने की अपेक्षा भी की गई है । यथा– 'आत्वा हर्षिमंतरेधि ध्रुव स्तिष्ठा विचाचलिः विशरत्वा

Scanned with OKEN Scanner

सर्वा वांछतु मात्वधं राष्ट्रमदि भ्रशत्।' ऋक 10–174–1 भावार्थ हे राष्ट्र के अधिपति। मैं तुझे चुन कर लाया हूं। तू सभा के अन्दर आ, स्थिरता रख, चंचल मत बन, घबरा मत, तुझे सब प्रजा चाहे। तेरे द्वारा राज्य पतित नहीं होवें। उक्त मंत्र से यह भी विदित होता है कि राष्ट्राधिपति को संसद जैसी किसी सभा में भी आना पडता था। शायद स्थानीय स्वशासन हेतु भी कोई (नगरों/ग्रामों या प्रांतो की) पंचायतें हुआ करती थी। इनसे भी उस चुने हुए राष्ट्राधिपति का अनुमोदन आवश्यक था, ऐसा प्रतीत होता है और ये पंचायतें शायद राष्ट्रधिपति को हटाने में भी सक्षम थी। इसके अतिरिक्त राष्ट्रधिपति का चुनाव तो प्रत्यक्ष प्रणाली से होता रहा होगा। ऐसा अथर्ववेद में मंत्र क्रमांक 3–4–2 के इन शब्दों कि 'देश में बसने वाली प्रजाएं तुझे चुनें।' से प्रतीत होता है लेकिन ये ग्राम/नगर/प्रादेशिक पंचायतें शायद जनता से न चुनी जाकर विद्वत् परिषदों के रूप में होती रही होगी। ऐसा इस मंत्र के शब्दार्थ से प्रतित होता है। यथा 'त्वां विशेष वृणता राज्याय त्वामिमाः प्रदिशः पंचदेवीः। वष्मन राष्ट्रस्य कुकदि श्रयस्व ततो व उग्रो विमजा वसूनि।' अथर्व 3–4–2 भावार्थ देश में बसने वाली प्रजाएं शासन के लिए तुझको राष्ट्रपति या प्रतिनिधि चुने। ये विद्वानों की बनी हुई उत्तम मार्गदर्शक, दिव्य पंचदेवी (पंचायते) तेरा वरण करें अर्थात् अनुमोदन करें। तत्प चात् तू उग्र तेजस्वी व प्रभावशाली दण्ड को न्याय बल के साथ सम्भाल और हमको जीवनोपयोगी धनों एवं अधिकारों का न्यायपूर्वक समान रूप से विभाजन कर।

राष्ट्र का नेतृत्व कैसा हो ? इसका भी निरूपण अथर्व वेद में किया गया है यथा– 'स्वस्तिदा विशान्पति बृत्रहा बिमृधो वशी। वर्षेन्द्रः पुर एतु नः सोमपा अभयंकरः।' अथर्व 1–21–1: इसका अर्थ है (प्रजा का या हमारा) कल्याण करने वाले हिंसा या आतंक का निरोध कर सके ऐसा बलवान सोमपा (अर्थात् ब्रह्मज्ञानी, ऐ वर्ययुक्त, न्यायप्रिय, यज्ञकर्ता, क्षत्र तेज सम्पन्न व प्राण बल का पान करने वाला) शत्रुओं को नष्ट कर प्रजा को अभय प्रदान करने वाला हमारा नेता बने। यानि कि आज देश के विभिन्न भागों यथा– कश्मीर मे जैसा हिंसा का वातारण है पूर्वोत्तर में जो आतंकवाद व अलगाववाद फैल रहा है, अन्यत्र जो बम विस्फोट आदि से हत्याएं और जो अन्य प्रकार की अराजकता फैल रही है, उससे जनता को अभय दे सके ऐसे नेतृत्व की कामना अथर्व वेद में की गई है। आज कश्मीर और पूर्वोत्तर आदि में जहां जनता आतंक से त्रस्त है या भ्रष्टाचार के विभिन्न घोटालों में जो नेता फंसे हुए है ऐसे नेताओं को निर्मूल करने की भी कामना के संकेत है। यथा–'यौनः पूषन्नथो वृको दुःशेव आदि देशाति। अपस्मतं पथो जहि। ऋग्वेद 1–42–2 !! भावार्थ – हे पूशन! प्रभो, यदि पापी व दुखदायी हम पर शासन करे तो उसे हमारे पथ से दूर कर कांटे की शांति उखाड कर फैक दे। इसी प्रकार ऋग्वेद के मंत्र 1–42–3 में परिपंथी, चोर व कुटिल जनों को दूर करने का आग्रह है। इससे यह स्पष्ट होता है आज से सहस्त्राब्दियों पूर्व भी हमारे देश में आज से भी उन्नत लोकतंत्र सुस्थापित था।

Scanned with OKEN Scanner

परिशिष्ट – 2

उद्‌बोधन : विकास की भारतीय अवधारणा, वर्तमान संकट व समाधान हमारी उज्जवल आर्थिक परम्परा

विकास की अवधारणा पर प्राचीन भारतीय वागंमय में पर्याप्त विवेचन है, जो उपनिषदों के उद्‌घोष 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' के अनुरूप प्रकृति के साथ समन्वयपूर्वक, मानव मात्र के सुस्थिर योगक्षेम पर केन्द्रित है। इसलिये कौटिल्य अर्थशास्त्र में मानव के योगक्षेम पर बल देते हुये लिखा है कि, मनुष्यों को आजीविका प्रदान कर उनके सुख चैन की व्यवस्था करने का शास्त्र अर्थशास्त्र है। यथा "मुनुष्याणां मनुश्याणां वृत्तिरर्थः। मनुष्यवती भुमिरिव्यर्थः तस्य पृथिव्याये लाभ पालनोपाय शास्त्रमर्थशास्त्रमिति। अर्थात सम्पूर्ण भूमण्डल पर आवासित मानव मात्र के लिये लाभपूर्ण आजीविका से उसके योगक्षेम को सुनिश्चित कर सबके लिये स्थाई सुख चैन की व्यवस्था का शास्त्र ही अर्थशास्त्र है। इसी हेतु ऋग्वेद परिवार की उत्पादकीय सम्पत्ति को 'पूंजी' कहते हुये इस बात पर सर्वाधिक बल दिया गया है कि परिवार की यह उत्पादकीय सम्पत्ति अर्थात पूंजी, जो उसके योगक्षेम का अवलम्बन है, कभी भी पृथक नहीं की जाये। दूसरी ओर आधुनिक अर्थशास्त्र पूंजी की परिभाषा देता है– Produced means of Production is capital. इस प्रकार हमारा अर्थ चिन्तन सर्व समावेशी विकास की अवधारणा व विकेन्द्रित उत्पादन व वाणिज्य की अवधारणा के अनुरूप इस पर बल देता रहा है कि प्रत्येक परिवार के योगक्षेम का आधार उससे अपृथक्य था। योगक्षेम शब्द में 'योग' से आशय है 'अप्राप्त की प्राप्ति' (अर्थात् जो अबतक प्राप्त नहीं हुआ है उसकी प्राप्ति) एवं 'क्षेम' का अर्थ है, 'जो प्राप्त हो गया, उसकी सुरक्षा'। यहाँ पर योगक्षेम से आशय भी सम्पूर्ण समाज के न्यायोचित योगक्षेम से है और किसी व्यक्ति के असीमित व अमर्यादित उपभोग को योगक्षेम नहीं कहा जा सकता है। अर्थात केवल जितने न्यूनतम वैयक्तिक उपभोग से मानव मात्र की न्यायोचित भौतिक आवश्यकताओं की पूर्त्ति, जीव सृष्टि के अन्य घटकों को उद्वेग दिये बिना, सुदीर्घ काल तक की जा सके वही विकास है। इसीलिये श्रीमद्‌भागवत पुराण में कहा है कि "यावद्‌भ्रियेत जठरं तावत् स्वत्वं ही देहिनाम। अधिक योऽभिमन्येत स स्तेन दण्डंऽर्हति।।" अर्थात जितने उपभोग से व्यक्ति की उदर पूर्त्ति अर्थात उसकी न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्त्ति हो जाये उतने पर ही उसका अधिकार है, उससे अधिक हस्तगत करने वाला चोर है, जो दण्ड का पात्र कहा गया है। इसी कारण दैनिक बलिवेश्वदेव में विधान है कि प्रत्येक व्यक्ति उसके द्वारा अर्जित सामग्रियों व संसाधनों से चींटी जैसे क्षुद्र प्राणी, कौआ, कबूतर आदि पखेरूओं, गौ व श्वान सहित सभी चौपायों सहित अभ्यागतों (कुछ भी प्राप्ति की आशा से उसके पास आने वाले मनुष्यों) की पूर्ति के इन्हीं पंच महायज्ञों से बचे यज्ञावशिष्ट को ही ग्रहस्थ अपने निजी उपभोग में लायें। प्रत्येक सद्‌ग्रहस्थ अपने आस पास के प्राणी मात्र के सम्यक पोषण एवं

Scanned with OKEN Scanner

उनकी आवश्यकताओं व अपेक्षाओं की पूर्त्ति हेतु पूरी क्षमता से सहयोग करे। इसी क्रम में, समाज की अपेक्षाओं की पूर्त्ति हेतु ही वेदों में उत्पादन में सभी प्रकार के अन्न धनादि की प्रचुरताओं का भी निर्देश किया है। यथा "गोधूमाश्चमे, माषाश्चमे, तिलाश्चमे, मुद्गाश्चमे..... ..."। अर्थात अन्न–धनादि के भण्डार में सभी प्रकार के उत्पादकीय पदार्थों के उत्पादन व भण्डारों में प्रचुर वृद्धि की कामना वेदों में की गयी है। आज की भांति ही वृहद स्तर पर अनेक स्थानों पर पूंजी निवेश कर व्यवसाय या कारोबार से लाभार्जन के भी अनेक मंत्र हैं। व्यवसाय के इन लाभों में यह अभिवृद्धि दस गुने से अरबों गुने तक होने की कामना की गयी है। यथा 'इमामे वेदों में अन्य बातों के साथ–साथ अत्यन्त समुन्नत व्यापार, वाणिज्य व उद्योगों के व्यवस्थित संचालन का विषद वर्णन है। प्राचीन काल में सम्भवतः व्यवसाय आज से भी अधिक उन्नत रहा है, इसलिये धन के लिये शब्दावली की दृष्टि से आज की तुलना में कहीं अधिक 60–70 प्रकार के धन व पूंजी के वर्णन है।

यथा

ऋग्वेद में तो सौ चप्पुओं वाले बड़े–बड़े जलयान से व्यापारिक यात्राओं से लेकर सहस्त्र खम्भों के भवनों के उल्लेख आदि भी अति प्राचीन काल से ही हमारे यहाँ उन्नत व वृहद स्तरीय व्यापार, वाणिज्य व उद्योगों के प्रमाण प्रचुरता में उद्धृत हैं।

हमारे हिन्दू अर्थशास्त्र में प्रचुरता व विकास की सर्वसमावेशक अवधारणा के कारण ही भारत में न केवल धन की प्रचुरता रही बल्कि विश्व–व्यापार में भी भारत की स्थिति अत्यन्त उन्नत रही है। हमने न केवल प्रकृति के साथ सनतुलन पूर्वक विकास किया बल्कि अत्यन्त उन्नत किस्म की प्रौद्योगिकी भी विकसित की। इसके प्रचुर प्रमाण आज भी सामने आ रहे हैं।

विगत 20 वर्षों में तमिलनाडू में कोडूमनाल स्थान पर उत्खनन में वहाँ एक प्राचीन 2800 वर्ष पुरानी औद्योगिक नगरी मिली है। वहाँ पर Vitrified Crucibles मिले हैं, जिनका उपयोग इस्पात (Steel) बनाने में होता था जहाँ अत्यन्त उन्नत स्वल्प कार्बनयुक्त Low carbon steel की उत्पादन होता था। आज चाहे सब कहते हैं कि, विट्रीफाईड टाईल्स का आविष्कार अभी हाल ही में यूरोप में हुआ है। लेकिन, कोडुमनाल में 2800 साल पुराने टपजतपपिमक ब्तनबपइसमे भारत में विट्रीफिकेशन की प्राचीनता को सिद्ध करते हैं। उड़ीसा की भट्टियों में तैयार इस्पात (जंग न लगने वाला) 2000 वर्ष पूर्व भारत की स्टील प्रौद्योगिकी की कहानी कह रहा है। अशोक की लाट कहलाने वाला गरूड़ स्तम्भ–महरौली, दिल्ली में इसका प्रमाण है। कोडुमनाल में पुरानी सभ्यताओं यथा मिस्त्र (अरब देश), रोम (इटली) और थाईलैण्ड (दक्षिण–पूर्व एशिया) के सिक्के निकले हैं। ये भी सिद्ध करते हैं कि, भारत प्राचीन समय से ही समृद्ध एवं दूर देशों से विश्व–व्यापार में व

Scanned with OKEN Scanner

प्रौद्योगिकी विकास में भी अग्रणी रहा है। इस बात की पुश्टि हाल ही में प्रकाशित विश्व के सहस्त्राब्दीगत आर्थिक इतिहास ग्रन्थ में भी कही गयी है।

औद्योगिक देशों के संगठन OECD, जिसमें अमेरिका जापान व यूरोप आदि सदस्य है के आग्रह पर ब्रिटिश आर्थिक इतिहासकार 'एंगस मेडिसन' ने हाल ही में विश्व का 2000 वर्ष का इतिहास लिखा है। उसमें उसने लिखा है शून्य A.D से लेकर 1000 A.D तक भारत का GDP विश्व में सर्वोच्च 33 प्रतिशत था अर्थात पूरे विश्व का तृतीयांश उत्पादन भारत में ही होता था। यहाँ तक कि 1700 A.D तक भी यह 24 प्रतिशत रहा है। लगभग 1200 वर्षों के विदेशी आक्रमणों, अंग्रेजों की लूट–खसौट व कुटिल नीतियों के बाद भी जब भारत स्वाधीन हुआ, तब से भी यदि हम ठीक दिशा में चलते तो आज विश्व की शीर्ष अर्थव्यवस्था होते। वर्ष 1947–48 में भी विश्व के सकल घरेलू उत्पाद में भारत की हिस्सेदारी 3.8 प्रतिशत थी। नेहरू के समाजवादी दुराग्रह–जनित नीतियों के परिणामस्वरूप 1991 में यह घट कर 3.2 प्रतिशत रह गया। इसके बाद डा. मनमोहन सिंह ने अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष व विश्व बैंक के दबाव में, 1991 से जिस वाशिगंटन सहमति के दबाव में बाजारवादी नीतियों के अधीन आयात व विदेशी पूंजी निवेश को बढ़ावा देना प्रारम्भ किया उसके कारण इन 22 वर्षों में अपनायी आयात व विदेशी निवेश उदारीकरण की नीतियों के कारण अब विश्व के सकल घरेलू उत्पाद (Nominal GDP) में, विनिमय दर के आधार पर (on the Basis of Rupee-Dollar exchange rate) हमारा योगदान और घटकर मात्र 2.65 प्रतिशत रह गया है। स्वाधीनता के समय 1947–48 में भी भारत की अर्थव्यवस्था की अन्तर्निहित सामर्थ्य, तुलनात्मक दृष्टि से अच्छी थी। तब 1947 में 1 डालर = 3.5 रुपये तुल्य था। हमारी मुद्रा के अवमूल्यन के कारण आज रूपया प्रति डालर 62 रुपये तक गिर गया है। इस अवमूल्यन के कारण यदि हमें 1947 में 100 डालर के एक बैरल खनिज तेल (Crude Patrolium) (जो हमारा सबसे बड़ा आयात हैं) के आयात पर हमें 350 रुपये खर्च करने होते थे वहीं अवलमूल्यन के कारण आज 6200 रुपये व्यय करने पड़ते हैं। स्मरण रहे कि अंग्रेज सरकार ने 1917 में प्रथम बार जब एक रूपये की भारतीय मुद्रा का नोट छापा था, तब वह एक रूपया 13 अमरीकी डालर तुल्य था। स्वाधीनता के समय 1947 में, विश्व व्यापार में भारत का अंश 2 प्रतिशत था जो घटकर सन् 2000 में 0.6 प्रतिशत रह गया था। पिछले दिनों आर्थिक सुधारों के प्रारम्भिक दौर में 90 के दशक में हम जिस विश्व बैंक व मुद्रा कोष (IMF) की आर्थिक सहायता पर अवलंबित हुये हैं, उन्हीं दोनों संस्थाओं की स्थापना के समय से 1958 तक हम (विश्व बैंक व अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के) पांच सबसे बडे अंशधारी (Quota Holders) में एक थे और हमारा एक–एक स्थायी निदेशक (Permanent Director) विश्व बैंक व अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) दोनों के संचालक मण्डल में, 1963 तक रहा है। यह भारत की अर्थव्यवस्था की तब की आन्तरिक

Scanned with OKEN Scanner

सामर्थ्य का प्रभाव था।

समाजवादी दुराग्रह : आर्थिक दुरावस्था का जनक

स्वाधीनता के तत्काल बाद, तत्कालीन साम्यवादी सोवियत संघ के दबाव में हमारे प्रथम प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू एवं तदुपरान्त प्रधानमंत्री इन्दिरा गाँधी द्वारा अपनायी समाजवादी नीतियों के कारण देश के विकास की सहज गति ही अवरूद्ध हो गयी थी। विकास को बाधित करने वाली इन समाजवादी नीतियों के कारण 1947 से 1991 तक देश की अर्थव्यवस्था इतनी जर्जर हो गयी कि 1991 में देश का सोना गिरवी रखकर, ऋण लेना पड़ा तथा उसके बाद 1991 में ही अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष से ऋण लेने के बदले उनकी शर्तों पर देश में सारे आयात खोलकर, विदेशी निवेश को बढ़ावा देने का बाध्य होना पड़ा। विगत 22 वर्षों में किये आयात उदारीकरण से आज देश के उत्पादक उद्योग जर्जर हो कर बन्द होते जा रहे हैं या विदेशी कम्पनियों द्वारा अधिग्रहीत किये जा रहे हैं व देश आज आयातित विदेशी वस्तुओं के बाजार मात्र में बदल गया है। इसी प्रकार विदेशी पूंजी के निवेश को बढ़ावा देते चले जाने से देश के उत्पादन तंत्र के 2/3 पर विदेशी कम्पनियों का अधिकार हो गया है।

विकास में बाधक समाजवादी प्रतिबन्ध : इनमें से सर्वप्रथम यदि, नेहरू व इन्दिरा काल की समाजवादी नीतियों पर दृष्टिपात करें तो पूर्व सोवियत संघ में दबाव एवं प्रभाव में वर्ष 1948 से ही आरोपित विकासरोधी एवं प्रतिबन्धकारी नीतियों के कारण देश की अर्थव्यवस्था 1991 तक आते–आते जर्जर होती चली गयी। उदाहरण के लिए 1948 व 1956 के औद्योगिक नीति प्रस्तावों के माध्यम से सरकार ने 40 प्रमुख उद्योगों को न्यूनाधिक रूप में सार्वजनिक क्षेत्र के लिए आरक्षित कर लिए। शेष उद्योगों की स्थापना पर भी औद्योगिक (विकास व नियमन) अधिनियम 1951 जैसे अनगिनत प्रतिबन्धात्मक कानूनों व प्रावधानों के माध्यम से निजी क्षेत्र में उद्योग स्थापना पर कई प्रतिबन्ध एवं कोटा व लाईसैंस की बड़ी बाध्यताएँ लगा दी गयीं। बिड़ला की दो पीढ़ियां निकल गई पर एक स्टील प्लांट का लाईसैंस नहीं मिला व टाटा की दो पीढ़ियाँ निकल गयी पर कार उत्पादन की लाईसेन्स उन्हें नहीं मिला। विडम्बना यह रही कि देश को 1947 से 1981 के बीच 30,000 करोड का लोहा व स्पात आयात करना पड़ा, जबकि उसके लिए कच्चा माल (प्तवद वतमद्ध भारत से निर्यात होता था। यद्यपि विश्व का पाँचवाँ बड़ा लोह अयस्क (प्तवद वतमद्ध उत्पादक भारत है। फिर भी हम कच्चा खनिज व अन्य देशों को निर्यात करते और उन देशों से लोहा व स्पात आयात करते थे। इस लोहा व स्पात के उत्पादन से रोजगार सृजन, उत्पादन शुल्क की आय एवं प्रौद्योगिकी समुन्नयन सभी कुछ उन देशों में होता था। हमें तो इसके लिये भारी मात्रा में विदेशी मुद्रा चुकानी पड़ती थी। यदि देश में हमने

Scanned with OKEN Scanner

समाजवाद के नाम पर निजी क्षेत्र के केवल एक स्पात (जममस) उत्पादन पर ही रोक नहीं लगायी होती तो 1981 तक जो 30,000 करोड़ रूपये के लोहे व स्पात के आयात से देश बाहर गयी, इतनी बड़ी मात्रा में विदेशी मुद्रा बचती इससे तब जो देश पर 18,000 करोड़ रूपयों का विदेशी कर्ज चढ़ गया था, उसके स्थान पर हमारे पास 12,000 करोड़ रूपये की विदेशी मुद्रा का अतिरेक (Surplus) होता। इस प्रकार प्रतिबंधकारी समाजवादी नीतियों के कारण ही देश में चीनी से लेकर सीमेण्ट कार, ट्रैक्टर, स्कूटर, लोह उत्पाद तक हर चीज का अभाव बना रहा। समाजवादी नीतियों के नाम पर सरकार नये कारखाने के लाईसैंस या तो देती ही नहीं थी अथवा देती भी तो इतनी कम क्षमता का कि वे उद्योग अनार्थिक हो जाते और देश में सब वस्तुओं के अभाव बना रहता, उद्यमी को भी लाभ नहीं हो पाता, प्रौद्योगिकी विकास रूका रहा और सब वस्तुओं में कालाबाजारी होती थी। देश में किसी वस्तु की जितनी आवश्यकता थी उतने उत्पादन के लाइसेन्स भी नहीं दिये जाने से उनका निर्यात तो दूर देश के उद्योगों को घरेलू मांग जितनी मात्रा में भी वस्तुओं के उत्पादन में स्वतंत्रता नहीं थी। इसलिये अनुसन्धान व विकास पर भी उद्योगों का व्यय नगण्य रहा और वे स्पर्द्धा क्षमता विहीन ही रहे। जिस उद्यम को जितनी क्षमता का लाइसैंस दिया जाता, उससे अधिक उत्पादन करने पर जुर्माना लगता था। इस प्रकार देश में अधिकांश वस्तुओं में अभावग्रस्त हो गया। उत्पादन करने की Private Sector को छूट न होने से देश आयातों पर अवलंबित होता चला गया।

अति प्रगतिशील करारोपण से पूंजी निर्माण में बाधा व विदेशी ऋणजाल : समाजवाद के नाम पर सारे ही कानून अव्यावहारिक बना दिये थे। मध्य 1970 के दशक में देश में आय कर की अधिकतम दर (Highest rate of Income tax) 97.3 प्रतिशत तक भी टैक्स चुकाना होता था। इससे कर चोरी (Tax evasion) की प्रवृत्ति बढ़ी। कालाधन विकसित हुआ। स्विस बैंकों में धन छिपाने की वृत्ति शुरु हुई। एक ईमानदारों के देश को कर चोरों व काला बाजारियों में बदलने वाली नीतियां लागू की जाती रहीं समाजवादी नीतियां। इतनी ऊंची कर दरों (Tax rates) के कारण सम्पन्न वर्ग की अधिकांश आय कर चुकाने में चली जाती और वे कर बचाने के लिये, उस आय को घोषित नहीं करते तो वह काले धन में बदल जाती। दोनों ही दशाओं में देश में पूंजी निर्माण रूक गया। निवेश के लिये पूंजी नहीं होने से विकास तो अवरूद्ध होना ही था। इसलिये देश का धन काले धन में बदलता चला गया और देश धन होते हुये भी निवेश आदि के लिये विदेशी ऋणों के जाल में फँसता चला गया। दूसरी ओर पूंजी निर्गमन नियन्त्रक कानून से लेकर एकाधिकार व प्रतिबन्धात्मक व्यापार व्यवहार अधिनियम जैसे ऐसे अनेक प्रतिबन्धात्मक कानून थे। जो देश का विकास रोकने में अडिग समाजवादी दीवार बने रहे। तथापि 1977 में मोरारजी देसाई के नेतृत्व में बनी सरकार ने अर्थ व्यवस्था को सुचारू करने के प्रयास में एक बार तो

Scanned with OKEN Scanner

देश को मुद्राकोष के ऋणों से तब मुक्त कर लिया था। लेकिन, तीन वर्ष में ही वापस श्रीमती गाँधी ने पुनः प्रधानमंत्री बनते ही मुद्रा कोष अनेक अपमान जनक शर्तों पर कर्ज ले लिया।

उदारीकरण के नाम पर आयात व विदेशी पूंजी को प्रोत्साहन के दुष्परिणाम

स्व. राजीव गांधी के समय में व यूरोपियन बैंकों से परिवर्तनशील ब्याज दरों (Floating Interest rate) पर लिये अल्पावधि ऋणों (Short term loans) के कारण 1991 के आते–आते देश का आर्थिक संकट गहरा गया। विदेश व्यापार घाटा 7 अरब डालर तक जा पहुँचा। तत्कालीन स्व. चन्द्रशेखर – सरकार को देश का 2600 टन सोना गिरवी रखना पड़ा और उसके अतिरिक्त, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष को 7.2 अरब डालर के एक और ऋण का आवेदन करना पड़ा। 21 जून, 1991 को नरसिंह राव प्रधानमंत्री बने। 24 जून को उनकी सरकार ने उसी 7.2 बिलियन डालर के ऋण आवेदन जो चन्द्रशेखर सरकार ने किया था उस पर ऋण स्वीकृत करवाने के लिये तत्कालीन वित्त मंत्री डा॰ मनमोहन सिंह ने बातचीत शुरु की। तब अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष व विश्व बैंक दोनों ने कहा कि भारत के सम्बन्ध में पहले से ही 2 रिपोर्टें तैयार कर रखी हैं एक तो India : A Strategy for trade reforms तथा दूसरी India: An Industrializing economy in Transition. इसलिए उन्होंने कहा कि आप इन्हें लागू करना आरम्भ करें तब ऋण दिया जा सकेगा। मुद्रा कोष के प्रतिवेदन – India : A Strategy for Trade Reforms के अनुसार तब हमसे कहा गया कि अपने रुपये का कम से कम 21 प्रतिशत अवमूल्यन करिए। तब 1 जुलाई, 1991 को हमने रुपये का 11 प्रतिशत अवमूल्यन किया जिस पर मुद्रा कोष के असन्तोष व्यक्त करने पर पुनः 3 जुलाई को हमें दुबारा अवमूल्यन कर 21 प्रतिशत अवमूल्य की शर्त को पूरा करना पड़ा। उसके बाद 5 जुलाई को नयी आयात नीति घोषित की, जिसमें देश आयात खोले और 24 जुलाई, 1991 को नयी औद्योगिक नीति ;प्दकनेजतपंस च्वसपबलद्ध घोषित कर विदेशी निवेश प्रोत्साहन की नीति प्रारम्भ की गयी। प्रारम्भ में 34 प्रमुख उद्योगों में 51 प्रतिशत तक प्रत्यक्ष (FDI) विदेशी निवश को स्वतः अनुमोदन Automatic approval की छूट दी। उसके बाद धीरे–धीरे उत्तरवर्त्ती सरकारों ने कुछ 3–4 उद्योगों को छोड़ कर सभी उद्योगों में शत प्रतिशत विदेशी प्रत्यक्ष निवेश (100 प्रतिशत FDI) को स्वतः अनुमोदन की छूट दे दी गयी। परिणामतः देश में जूते के पॉलिश, शीतल पेय व मंजन (टूथ पेस्ट) से लेकर स्कूटर, मोटर साइकिल, कार, टी.वी., फ्रिज, सीमेण्ट और दूर संचार (टेलीकॉम) पर्यन्त सभी उत्पादक उद्योग विदेशी कम्पनियों के स्वामित्व व नियन्त्रण में चले जा रहे है। आयात उदारीकरण से देश का विदेश व्यापार घाटा जो 1991–92 में 2.6 अरब डालर ही था, वह अब बढ़कर 191 अरब डालर तक पहुँच गया और देश के उत्पादक उद्योग बन्द होते चलें जाने से आज देश विदेशी वस्तुओं जिनमें

Scanned with OKEN Scanner

अब प्रमुखतः चीनी वस्तुओं के बाजार में बदल गया है। आयात शुल्क घटाते जाने से सरकार के राजस्व के स्रोत सूखते चले गये। इसलिये आज सरकार शिक्षा, चिकित्सा, सड़क निर्माण सभी का निजीकरण या पब्लिक प्राईवेट पार्टनरशिप में देने को बाध्य हो रही है और कृषि, लोक कल्याण व रक्षा जैसे क्षेत्रों के लिये भी समुचित वित्तीय प्रावधान नहीं कर पा रही है। रक्षा व्यय में तो आज हम 1963 के पहले के स्तर पर अर्थात् सकल घरेलू उत्पाद (GDP) का 2 प्रतिशत ही व्यय कर पा रहे हैं।

यहाँ पर यह भी उल्लेखनीय है कि शुरु में तो नये उद्यमों में ही विदेशी प्रत्यक्ष निवेश छूट दी थी, इसलिये तब नया उद्यम लगाकर ही विदेशी निवेश करना सम्भव होता था। बाद में ब्राउन फील्ड विदेशी निवेश खोल दिया, इससे विदेशी निवेशकों को किसी भी चलते हुये भारतीय उद्यम को अधिगृहीत करने की भी छूट मिल गयी। इन विदेशी निवेश प्रोत्साहन की नयी नीतियों से एक नये प्रकार का आर्थिक संकट शुरु हो गया। देश के अर्थ तंत्र पर विदेशी स्वामित्व व नियन्त्रण होना प्रारम्भ हो गया। उदाहरण के लिये सन् 2000 से पहले सारे सीमेन्ट के कारखाने भारतीयों के स्वामित्व में थे। अब जब उदारीकरण के दौर में टाटा के Tisco के सीमेन्ट के कारखाने फ्रांस की कम्पनी लार्फाज़ ने ले लिये। 'गुजरात अबुंजा' और 'एसीसी' को हाल ही में स्विटजरलैंड की होलसीम कंपनी ने ले लिया। इस प्रकार से कुल मिलाकर सीमेन्ट उद्योग का 65–70 प्रतिशत हिस्सा छः बड़ी यूरोपीय कम्पनियों के स्वामित्व व नियन्त्रण में चला गया है। इस प्रकार हम देखते है कि मंजन (Tooth-paste) से लेकर जूते की पॉलीश और शीतल पेय से लेकर टी.वी., फ्रीज, मोटरसाईकिल, कारें और उसके बाद टेलिकम्युनिकेशन व पावर जनरेशन प्लान्ट निर्माण तक में विदेशी बहुराष्ट्रीय कंपनियों का वर्चस्व बढ़ता चला गया है। प्रश्न यह उठता है कि देश के उत्पादन के साधनों पर किसका स्वामित्व व नियन्त्रण रहेगा, भारतीयों का या विदेशी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का ?

दूसरी तरफ आयात उदारीकरण के कारण पूरा देश विदेशी वस्तुओं के लिये बाजार बन रहा है। हमारे सारे के सारे उद्योग धीरे–धीरे चौपट होते चले जा रहे हैं और इसके कारण आज आयात बढते चले जाने से पिछले वर्ष हमारा विदेशी व्यापार घाटा 191 बिलियन डालर पर पहुंच गया था। आयात बढ़ते गए, निर्यात उतना बढ़ा नहीं, इसलिए देश का विदेश व्यापार घाटा जो 91–92 में 2.6 बिलियन डॉलर था वह आज बढ़कर 2012–13 में 191 अरब डॉलर तक पहुंच गया। यह विदेश व्यापार में घाटा बढ़ते चले जाने से रुपये की कीमत में लगातार गिरावट आती चली जा रही है। आर्थिक सुधार लागू किए उस समय हमारे यहां रुपये डालर की विनिमय दर 19 रुपये से आज 66 रुपये तक पहुंच गया। देश में कोई आश्चर्य नहीं, क्योंकि अभी वर्तमान में सरकार के पास ऐसे कोई भी साधन नहीं बचे हैं कि जिससे वह एकदम बिना कुछ कठोर निर्णय लिए, इस विदेश व्यापार

Scanned with OKEN Scanner

घाटे को रोक सके। इसके लिये सरकार क्या करती है। हर साल नये–2 क्षेत्र में विदेशी पूंजी के लिये नये क्षेत्र खोलती चली जाती है तो इनके कारण यह वही स्थिति है कि जैसा युधिष्ठिर शकुनी के साथ जुए में एक–2 कर, अपने गांव, अपने आभूषण, अपने राज्य व भाईयों तक सबको हारते चले गये। उसी तरह से हमने भी इन 23 वर्षों में आर्थिक उदारीकरण के नाम पर अपने यहाँ विभिन्न प्रकार के उद्योगों में विदेशी निवेश खोलकर उन्हें विदेशी कम्पनियों के हाथों खोते चले गये हैं और इसके कारण आज हमारे देश के उत्पादक उद्योगों में 2/3 से अधिक विदेशी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का वर्चस्व स्थापित हो गया है।

भावी आर्थिक सुधारों के परिणाम और भी चुनौति पूर्ण : अब चूंकि सरकार के पास विदेशी निवेशकों को सौंपने के लिए बहुत कम आर्थिक क्षेत्र बचे हैं। रक्षा उत्पादन व बीमा में 26 से 74 या 100 प्रतिशत विदेशी निवेश सीमा में वृद्धि करना भोश है, पेंशन फण्ड व फुटकर व्यापार में नये सिरे से विदेशी निवेश खोलना और शिक्षा, चिकित्सा व जलदाय योजना जैसी जन उपयोगितायें बचीं हैं या रेलवे और विद्युत पारेशण व वितरण जैसे अवसंरचना क्षेत्र। इसलिए पिछले साल फुटकर व्यापार में विदेशी निवेश खोलने का निर्णय लिया है, और उससे पूर्व अक्टोबर 2012 में मनमोहन सिंह मंत्रीमण्डल ने बीमा में विदेशी निवेश सीमा 26 से 49 करने और पेन्शन फण्ड में भी नये सिरे से 49 प्रतिशत तक विदेशी निवेश की अनुमति का निर्णय लिया है। ये सभी निर्णय अर्थ व्यवस्था व आम समाज के योगक्षेम के लिये अत्यन्त घातक है।

खुदरा व्यापार में विदेशी प्रत्यक्ष निवेशः देश में आज सवा करोड़ फुटकर दुकानें हैं, चार करोड़ लोग उसमें, रोजगार में लगे हुए हैं, एक व्यक्ति के परिवार में चार लोग जोड़ें तो 16 करोड़ लोगों का योगक्षेम, उनका जीवन निर्वाह यह सब कुछ इस फुटकर व्यापार पर निर्भर है। देश में साढ़े 22 लाख करोड़ रुपये का कुल वार्षिक करोबार फुटकर व्यापार के क्षेत्र में होता है और उसमें 4 करोड़ लोग लगे हुए हैं। दूसरी ओर दुनिया की जो बड़ी–बड़ी फुटकर व्यापार वाली कम्पनियां हैं, जिनको चैन्स ऑफ स्टोर्स कहते हैं उसमें वॉलमार्ट है मेट्रोएजी है कैरीफोर जैसी अनेक बहुराष्ट्रीय कम्पनियां हैं। वॉलमार्ट का भी साढ़े 22 लाख करोड़ रुपये का दुनिया में कारोबार है, लेकिन उसने केवल 21 लाख लोगों को रोजगार दिया हुआ है। यदि वैसे मॉडल वाले फुटकर व्यापारी यहां आएंगे तो अपने देश में व्यापक रूप से बेरोजगारी फैलेगी। अगर ये विदेशी फुटकर श्रृंखलाएँ (चेन्स ऑफ स्टोर्स) आती हैं तो वो चीन का, दक्षिण एशियाई देश जहां का माल सस्ता होगा, वहां से लाकर बेचेंगे। इससे आज जो थोड़े बहुत भी लघु, मध्यम व बड़े उद्योग देश में बचे हैं और फुटकर व्यापार के माध्यम से उन कारखानों का माल बिक रहा है वे उद्योग भी चौपट होंगे। ऐसे जब चेन्स ऑफ स्टोर्स आएंगे तो वे पूरे देश में एक जैसी लौकी, एक जैसा

Scanned with OKEN Scanner

टमाटर, या समरूप ऐग्रीकल्चर प्रोडक्ट्स लेकर आएगें तो किसान को वह अपना बीज देकर कांट्रेक्ट फार्मिंग शुरु करवा लेंगे। अब क्योंकि देश में फुटकर कारोबार के क्षेत्र में अधिकांश ऐसी बड़ी कम्पनियां होंगी तो किसान को जब अपना माल उन बड़ी कम्पनियों को बेचना होगा तो वो जो अपनी जमीन का मालिक है तो वह शेयर क्रॉपर यानि बटाईदार हो जाएगा।

अब जब वे पूरे देश में अपने फुटकर दूकानों की श्रृंखला के लिए माल दक्षिण पूर्व एशिया या चीन से लाएंगे तो बन्दरगाहों से माल लाना या ठेके पर खेती करने वाले किसानों का माल ट्रांसपोर्ट करना होगा तो वे अपना सारा सप्लाई चेन या ट्रासपोर्ट का काम भी बड़े ट्रांसपोर्टर्स को दे देंगे, छोटे ट्रांसपोर्ट व्यवसाई जो हैं उनका काम भी चौपट होगा। कई लोग यह तर्क देते हैं कि किराने का माल जो है या छोटे–छोटे किराने के जो स्टोर्स हैं वह उससे प्रभावित नहीं होंगे। लेकिन वॉलमार्ट या मेट्रो ए.जी. का मॉडल अगर हम ध्यान से देखें तो पता चलेगा कि चीन में उन्होंने क्या किया, दक्षिण पूर्वी एशिया में उन्होंने क्या किया, यूरोप में क्या किया। वो क्या करते हैं कि पहले अगर दिल्ली में आएंगे तो पूरे दिल्ली में वो एक हजार डिस्काउंट स्टोर्स खोलेंगे। जहां हर चीज, लक्स साबुन भी होगा उसे वह 40 प्रतिशत डिस्काउंट पर बेचेंगे। जर्मनी की फुटकर व्यापार कम्पनी मेट्रो ए. जी. जब चीन में गई तो पहले साल उसने सौ करोड़ डालर का घाटा खाया, दूसरे साल दो सौ करोड़ डालर का घाटा खाया था। प्रारम्भ ऐसे घाटा सहन कर अपने डिस्काउंट स्टोर्स में जब वह सस्ता माल बेचेंगे तो छोटे फुटकर व्यापारी अपना फुटकर कारोबार बंद करने को बाध्य हो जाएंगे। जब ऐसे डिस्काउंट स्टोर्स के कारण ज्यादातर फुटकर व्यापारी अपना व्यापार बंद करके चले जाएंगे तो उसके बाद वे भी अपने डिस्काउण्ट स्टोर बन्द कर 50 सुपर मार्केट पूरी दिल्ली में खोल देंगे। फिर चूंकि जो ऐसे रिटेल चैन स्टोर्स होते हैं उनको वृहद स्तरीय खरीद पर दुनिया में उधार बहुत लम्बी मिल जाती है। मान लो वे 500 करोड़ का साबुन गोदरेज सोप से खरीदने का अनुबन्ध करेंगे। तो वो कहेगा कि मैं 90 दिन का उधार दूंगा। उनके पास माल उधार आता है पर बेचते रोकड़ हैं। इससे उनके पास इतना कैश होता है कि उसको वो कहीं भी इन्वेस्ट करते हैं बैंकों में, स्टॉक मार्केट में तो उस पर इतना मुनाफा कमा लेते हैं कि उनको ट्रेडिंग या व्यापार से लाभ कमाने की आवश्यकता ही नहीं रहती। इसलिए छोटे स्थानीय व्यापारी उस व्यापार से बाहर हो जाते हैं।

आर्थिक पराधीनता की ओर : प्रश्न यह उठ खड़ा होता है कि पांच वर्ष बाद इस देश के उत्पादन साधनों, व्यापार व वाणिज्य पर किसका नियंत्रण रहेगा? हम भारतीयों का या विदेशी बहुराष्ट्रीय कंपनीओं का? अब क्योंकि उदारीकरण से आयात बढे तो अत्यन्त दूर्भाग्यपूर्ण है कि आज देश में उत्पादक उद्योगों की आर्थिक वृद्धिदर 1.0 प्रतिशत से भी

Scanned with OKEN Scanner

कम चली गई है। 2012–2013 में यह 1.2 प्रतिशत थी 2011–12 में 2.7 प्रतिशत थी और आजादी के समय से 2008 तक सदैव मेन्युफेक्चरिंग सैक्टर की वार्षिक वृद्धिदर 5–6 प्रति ात तक रही है। मेन्यूफेक्चरींग क्षेत्र ही किसी भी देश में रोजगार, सरकार के राजस्व और लोगों की आय का आधार होता है।

राजस्व संकट से सुरक्षा भी दाँव पर : आयात उदारीकरण से हुयी राजस्व क्षति के कारण एक सम्प्रभुत्व सम्पन्न देश के रूप में अपनी अवसंरचना विकास से लेकर रक्षा सन्नद्धता भी प्रभावित हुयी है। इसके परिणामस्वरूप आज भी हमारे सामने जैसे विकल्प हीनता की स्थिति उत्पन्न हो गई है। कैसे?एक उदाहरण देखें–नयी उदार आयात की नीति के कारण हम सब विषयों में तेजी से कस्टम डयूटी घटाने लगे। अब विदेशी कारें, विदेशी शराब आदि अनावश्यक वस्तुओं पर Custom duty 320% तक थी। विश्व बैंक के निर्देशानुसार उसे तेजी से घटाना शुरू किया। अपने देश में बनी वस्तुओं पर समानुपात में उत्पाद शुल्क (Excise duty) भी कम करना पड़ा। अब Import duty व Excise duty जिन्हें Indirect Tax कहते हैं। वे ही सरकार के राजस्व का मुख्य आधार रहे हैं। किन्तु जी. डी.पी. में Indirect Tax की अनुपात लगातार तेजी से घटाने से सरकार के राजस्व स्त्रोत घटते चले गये। सुधारों से पहले देश में अप्रत्यक्ष करों का अनुपात हमारे जी.डी.पी. में 9.8 प्रतिशत था, वह अब घट कर 4.5 प्रतिशत रह गया। यह जो राजस्व में लगातार घाटा हो रहा है इसका Projection अगर देखें तो विकट स्थिति बन रही है। सरकार के कुल राजस्व में 6–7 लाख करोड़ रूपये की सीधे कमी हो गई। हमने अपने कर संसाधनों को, इन नीतियों के कारण सुखा दिया। इससे रक्षा अवसंरचना विकास एवं लोक कल्याण के प्रमुख मदों तक के लिये संसाधनों का भारी अभाव हो गया है।

आर्थिक सुधार हमारी सुरक्षा के लिये भी चुनौति : इस संसाधनों के अभाव के कारण ही आज चीन से इतने बड़े संकट के बाद भी भारत सरकार को 2013–14 में रक्षा बजट प्रावधान 1963 से भी पहले के स्तर पर ले जाना पड़ा है। 1962 के युद्ध से पहले हम अपने बजट का जी॰डी॰पी॰ का 1.5 प्रतिशत ही खर्च रक्षा तैयारियों हेतु करते थे। चीन से युद्ध में 1962 में अक्सईचिन खोने के बाद रक्षा व्यय बढ़ा कर उसे जी.डी.पी. के 2.3 प्रतिशत पर ले गए, किन्तु इस बार फिर जी॰डी॰पी॰ के 2 प्रतिशत के स्तर पर लाने को विवश हुए है। क्योंकि सरकार के अनेक कर–संसाधन सूख गए है और इसीलिए शिक्षा, चिकित्सा, जल–योजना, सड़क निर्माण जैसी मूलभूत चीजों को भी निजिकरण या PPP (Public Private Parnership) में देना पड़ रहा है। यह स्थिति इसीलिए उत्पन्न हुई कि नई नीतियों के कारण राजस्व का एक बड़ा स्त्रोत सूख गया है। स्मरण रहे 1987–88 में हम अपने जी.डी.पी. का 3.8 प्रतिशत रक्षा पर व्यय करने की स्थिति में थे।

Scanned with OKEN Scanner

बीमा व पेन्शन कोष में विदेशी निवेश : हाल ही में बीमा में विदेशी निवेश सीमा 26 से बढ़ाकर 49 प्रतिशत करने व पेन्शन कोषों में 49 प्रतिशत तक विदेशी निवेश करने का जो निर्णय लिया है, उससे देश के आर्थिक कोष विदेशी नियन्त्रण में जायेंगे और आम लोगों की बचतें व सामाजिक सुरक्षा संकटापन्न होगी। बीमा व पेन्शन कोष में विदेशी निवेश तो नाम मात्र का आयेगा। लेकिन, देश की वित्तीय सम्पदा विदेशी निवेशकों के नियन्त्रण में जायेगी। आज देश में बीमा क्षेत्र की कुल पूंजी 29,000 करोड़ रूपये है। लेकिन बीमा क्षेत्र के नियन्त्रण में देश के लोगों की बचत व निवेश के 16 लाख करोड़ रूपये से अधिक के संसाधन है। सरकार का यह आकलन कि बीमा में विदेशी निवेश सीमा 26 से 49 प्रतिशत कर दिये जाने से 6 अरब डालर (37,200 करोड़ रूपये तुल्य) की विदेशी पूंजी आयेगी, सर्वथा भ्रामक है। जब 2002 में बीमा में विदेशी निवेश खोलने से लेकर आज तक 10 वर्ष में मात्र 1.36 अरब डालर ही आया है, वह भी जब कि अर्थ व्यवस्था 8–10 प्रतिशत वार्षिक की दर से बढ़ रही थी और बीमा क्षेत्र 20 प्रतिशत वार्षिक से अधिक की दर से बढ़ रहा था। आज जब हमारी वृद्धि दर 5 प्रतिशत रह गयी है, और बीमा उद्योग घाटे में चल रहा है। ऐसे में 6 अरब डालर छोड़ 1 अरब डालर की पूंजी भी नहीं आयेगी। लेकिन बीमा क्षेत्र की निजी क्षेत्र 20 से अधिक बीमा कम्पनियों पर विदेशी नियन्त्रण और मजबूत हो जायेगा।

शिक्षा व अन्य लोक कल्याणकारी सुविधाओं का भी विदेशीकरण सर्वथा अनुचित : इस प्रकार उपरोक्त वर्णित एक–एक कर, सरकार द्वारा विगत 22 वर्षों में सभी आर्थिक क्षेत्र विदेशी निवेश के लिए खोलते चले जाने के बाद अब शिक्षा में विदेशी निवेश खोलने के लिये फॉरेन एजुकेशनल इंस्टीट्यूशन्स बिल 2005 से ही पार्लियामेंट में लम्बित है। अभी 6 ऐसे विधेयक सरकार ने संसद में लाए हैं जो विदेशी शिक्षा सेवा प्रदाताओं (फॉरेन एजुकेशन सर्विस प्रोवाइडर्स) को एक सुगमीकृत वातावरण (enabling environment) प्रदान करने के लिए ही हैं। ऐसे अनुमान हैं कि भारत जैसे विकासशील देश अपने यहां अगर शिक्षा चिकित्सा व जलदाय योजनाओं में विदेशी निवेश खोल दें तो इन तीन क्षेत्रों में विदेशी सेवा प्रदाताओं के लिये क्रमशः 48 खरब (4.8 trillion) 32 खरब (3.2 trillion) व 20 खरब (2 trillion) डालर के उदीयमान व्यवसाय के अवसर (sun-rise areas of business) खुल जायेंगे। तीनों मिलाकर 10 ट्रिलियन डालर्स का सनराइज एरिया ऑफ बिजनेस खड़ा हो जाएगा। अगर इन तीनों ही क्षेत्रों में भारत में भी यदि विदेशी निवेशक या सेवा प्रदाता आते हैं तो आज जो हमारे यहां पर जनउपयोगितायें कहलाती हैं वे बहुराश्ट्रीय कम्पनियों की मुनाफाखोरी के साधन बन जाएंगी। मान लीजिए एक विदेशी शिक्षा सेवा प्रदाता के रूप में कोई बिजनेस स्कूल या आई.टी. संस्थान आयेगा तो दिल्ली में उसके एमसीए या एमबीए का शुल्क होगा 80 लाख रुपये। यदि उसमें वह संस्थान सौ

Scanned with OKEN Scanner

छात्रों को भर्ती करेगा तो उसे 80 करोड़ रुपया वार्षिक मिलेगा। पढ़ाने वाले अधिकांश शिक्षक यहीं के होंगे और मुश्किल से वर्ष भर का उस संस्थान का व्यय 10 करोड़ रूपये होगा, जिससे यह फॉरेन एजुकेशन सर्विस प्रोवाइडर 70 करोड़ रुपये विदेश ले जाएगा। अमेरिका में 35 प्रतिशत कार्पोरेट इनकम टैक्स होने से उस 70 करोड़ रूपयों के लाभ में से 35 प्रतिशत (24 करोड़ रूपये) अमेरिकी सरकार को टैक्स के मिलेंगे और 46 करोड़ रुपया उस संस्थान के हित धारकों (Share Holders) में बंट जाएगा। इसी चाहे जलदाय योजना हो या डाक तार या बीमा व चाहे स्वास्थ्य सेवाएँ इन सभी सेवाओं से विदेशी सेवा प्रदाता इसी तरह से लाभों को ले जायेंगे। इन लोक कल्याण की जनोपयोगी सेवाओं का भी हम व्यापारीकरण कर देगें तो लोक कल्याणकारी सरकार का अर्थ ही क्या और देश ये सेवा प्रदाता कितना धन ले जायेंगे रह जायेगी? यह अमान्य है, नहीं होना चाहिए।

डब्ल्यू.टी.ओ. : विकासशील देशों के हाथ बांधने का तंत्र

उदारीकरण के अधीन विकास देशों में आयात व विदेशी निवेश खुलवाने के बाद जब औद्योगिक देशों को लगा कि ये सम्प्रभुत्व सम्पन्न देश कभी भी अपने यहाँ आयात व विदेशी निवेश को पुनः प्रतिबन्धित कर सकते है, और यदि औद्योगिक देशों का माल इनके बाजारों में नहीं बिकेगा तो उन्हें विदेशी मुद्रा कहां से मिलेगी। उन्हें लगा हम पेट्रोलियम, गैस, कच्चे माल, फल, सब्जियां, अनाज आदि कहां से खरीदेंगे? स्विटजरलैंड की सर्वोच्च प्रति व्यक्ति आय है, वहां न कोई खनिज है, न कोई एग्रीकल्चर डाइवर्सिटी, न कोई बायोडायवर्सिटी है। इसलिये तो उन सब देशों को लगा कि वे तो गरीब देशों जैसे हो जायेंगे एवं आज के विकासशील देश धनी व औद्योगिक देश बन जायेंगे। इसलिये उन्हें लगा कि आर्थिक उदारीकरण व वैश्वीकरण की बात इस तरह लागू करनी चाहिए कि ये विकासशील देश अपने यहाँ भविष्य में भी पुनः आयात व विदेशी निवेश पर रोम नहीं लगा दें और सरल पेटेण्ट कानूनों से पुनः स्वावलम्बी विकास के मार्ग पर नहीं बढ़ने लग जायें। उदारीकरण से इन लगभग 70–80 विकासशील देशों के तीन चौथाई उत्पादन तन्त्र पर औद्योगिक देशों की जिन बड़ी बहुराष्ट्रीय कंपनियों का स्वामित्व हो गया है वह सुस्थिर हो जाये। इसलिए गैट (GATT) वार्त्ताओं के आठवें दौर में वे विश्व व्यापार संगठन (WTO) के निर्माण और उसके अधीन ऐसे बहु पक्षीय व्यापारिक समझौतों के प्रस्ताव लेकर आगे आए, जिनके माध्यम से विकासशील देशों के हाथ बांधे जा सकें। उदाहरणार्थ WTO के अधीन आने वाले विविध बहुपक्षीय व्यापारिक समझौतों (Multilateral Trade Agreements) में एक agreement है General Agreement on Trarriffs and Trade (GATT) 1994, जिसमें प्रावधान है कि किसी भी देश की सरकार अपने देश में किसी भी वस्तु के आयात व निर्यात पर रोक नहीं लगा सकती है। इसी कारण हमारे यहाँ 2300 वस्तुओं के आयात पर जो मात्रात्मक प्रतिबन्ध (Quantitrative Restrictions) थे।

Scanned with OKEN Scanner

इसी तरह WTO के ही समझौते Agreement on Agriculture के Minimum Market Access के एक प्रावधान के अधीन हमें आवश्यकता नहीं होने पर भी हमें अपने वार्षिक कृषि उपभोग (agriculture consumption) के 5 प्रतिशत तक कृषि उत्पादों का हमको विदेशों से आयात करना पड़ता है। इसलिए चाहे वह मक्का जैसा मोटा अनाज हो, चाहे पाउडर का दूध हो, उसके लिए Tarriff rate Quata घोषित करके सरकार 66 के स्थान पर 15 प्रतिशत आयात शुल्क पर आयात अनुमति (market acces) देती है। इसी तरह से एक Agreement है Agreement on trade related investment measures अभी ताजा सटीक उदाहरण है। हमारे Telecom और Electronics के आयात बहुत बढ़ जाने से Telecom Ministry ने अभी पिछले वर्ष Telecom manufacturing policy बना कर देश में बिकने वाले सभी दूरसंचार उत्पादों में न्यूनतम 30 प्रतिशत हिस्से पुर्जे भारत में बने हुए लगने अनिवार्य कर दिये। लेकिन, commerce ministry ने कह दिया कि इसको लागू करना संभव नहीं है। क्योंकि, हमने विश्व व्यापार संगठन के Agreement on Trade related investment measures में हस्ताक्षर कर रखे हैं, और उसके अधीन हम किसी भी निवेशक के ऊपर यह शर्त नहीं लगा सकती कि वह कुछ प्रतिशत हिस्से पुर्जे स्थानीय उपयोग करे या स्थानीय स्तर पर बनाये।

दवाईयों के सम्बन्ध में WTO की चुनौतियाँ और भारत की सामर्थ्य : विश्व के 190 देशों में दवाईयाँ हमारी तुलना में 10 से 100 गुना महंगी हैं। Medicines are cheapest in India क्योंकि हमारे यहाँ 2005 तक जो पेटेंट कानून लागू था वह मानवोचित आधार पर बना हुआ था और हम अब तक दवाओं व कृशि रसायनों के सम्बन्ध में केवल प्रक्रिया पेटेण्ट (process patent) देते थे। इसलिए दुनिया में कोई भी दवाई जब भी आयी हमने भी 2 से 4 साल में हमने उसके निर्माण की वैकल्पिक विधि खोज (Alternative process of synthesis develop) कर उनका अल्प मूल्य पर उत्पादन आरम्भ कर लिया। वर्ष 2005 तक हमारे देश में प्रक्रिया पेटेण्ट का ही प्रावधान होने से, भारत में दवाईयाँ विश्व के सभी देशों की तुलना में अत्यन्त सस्ती रही हैं। हमारे अलावा सभी देशों में दवाईयाँ 10 से लेकर 100 गुनी तक महंगी हैं। उदाहरण के लिए Cfran या Ciflox कई लोगों ने खरीदी होगी जो हमारे यहाँ रु. 3 से 8 के बीच मिल जाती है। हमारे देश में उसका जो basic compound ciprofloxacin है उसे 90 कंपनियाँ बनाती हैं और वह थोक में 900 रुपए प्रति किलोग्राम में मिलता है। इसलिये 500 मिलीग्राम की एक टेबलेट में 45 पैसे का सिप्रोफ्लाक्सासिन लगता है और 500 उह की एक टेबलेंट 3 रुपये से 8 रुपये में मिल जाती है। दूसरे देशों में कहीं भी इसकी कीमत 350 रुपये से कम नहीं है। 95 रुपये से कम में तो कहीं भी उपलब्ध नहीं है, जबकि उसके patent की अवधि भी खत्म हो चुकी है। अब हमारे देश में भी 2005 से हमने WTO की बाध्यता के कारण नया

Scanned with OKEN Scanner

पेटेंट कानून लागू किया। इसलिए अब 2005 से ही 1995 के बाद की आविष्कृत जितनी दवाईयाँ हैं और जितने कृषि रसायन (Agrochemical molecules) हैं वे सभी बहुत महंगे हैं। यथा Bayer-AG (जर्मन कम्पनी) के लीवर व किडनी केन्सर के इंजेक्शन Nexavar की कीमत वर्ष 2012 तक 2 लाख 80 हजार रुपये थी। हमारे देश की एक Natco कंपनी है, उसने चीफ कन्ट्रोलर ऑफ पेटेन्ट से Compulsory Licence प्राप्त कर इस दवा को 8800 रुपये में बनाकर बेचना प्रारम्भ किया है। जिस पर वह 6 प्रतिशत royalty उसके original inventor, Bayer-Ag को भी देती है। लेकिन, जिस chief controller of Patents श्री P.H. Kurian ने यह license दिया। उनको 2 महिने बाद ही उस पद से विदेशी कम्पनियों के दबाव में स्थानान्तरित कर दिया। उसके बाद नये कण्ट्रोलर ने ऐसे ही एक अन्य मामले में अनिवार्य लाईसेंस देने का साहस नहीं किया।

Compulsory License का प्रावधान कैसे आया इसका भी संघर्ष का इतिहास है। वर्ष 1997–98 के आस पास जब AIDS की दवाईयाँ महंगी थी तो भारतीय कंपनियों ने दुनिया के दूसरे देशों से कहा कि वहाँ पर एक AIDS के मरीज का खर्च 6–7 लाख रुपये आता है, 15 हजार डालर प्रतिवर्ष आता है, हम 500 डालर प्रतिवर्ष में आपको निर्यात करने को तैयार हैं, बशर्ते आप compulsive lincese दे दें। तो ब्राजील और द.अफ्रीका जैसे कई देशों ने ये कदम उठाया। तो जैसे ही द.अफ्रीका ने भारत से AIDS की सस्ती दवाईयाँ निर्यात करने का compulsive license बनाया तो वहाँ के सुप्रीम कोर्ट में अमरीकी कम्पनियों ने स्टे लेने की याचिका दायर की। अमेरिकी सरकार ने ब्राजील की सरकार के विरूद्ध WTO की dispute settlement body में मुकदमा दर्ज किया। इस बीच में भारतीय कंपनियों ने कहा कि हम तो one dollar a day आपकी treatment को इतनी कम कीमत पर भी बेचने को तैयार हैं तो लगभग 2 प्रतिशत कीमत पर बेचने का प्रस्ताव कर दिया तो केपटाउन में वहा के अफ्रीकियों ने सुप्रीम कोर्ट से लेकर वहाँ के अमेरिकी दूतावास तक में बड़ा उग्र प्रदर्शन किया वो प्रदर्शन इतना उग्र था कि अमेरिकी कंपनी डर गईं और उन्होने मुकदमा वापस ले लिया। इस दक्षिण अफ्रिकी प्रकरण के बाद अमेरिकी प्रशासन भी डर गया कि कहीं पूरे लैटिन अमेरिका और अफ्रीका में पेटेंट के विरुद्ध ऐसे अभियान चला तो WTO हिल जाएगा। इसलिये अमेरिका ने भी ब्राजील के खिलाफ जो मुकदमा WTO की Dispute settlement body में लगा रखा था । उसको भी वापस ले लिया।

उसके बाद दोहा (कतर देश) में WTO का सम्मेलन हुआ। एड्स की व अन्य महंगी दवाओं वाले विषय पर सभी विकासशील देश भारत, मैक्सिको, ब्राजील, द.अफ्रीका व मलेशिया के नेतृत्व में एकजुट हो गए और उन्होने कहा कि दवाओं के पेटेण्ट के मामले में हम इस तरह के शोषण का घोर विरोध किया यह सम्मेलन ही समाप्त हो जाए, ऐसी

Scanned with OKEN Scanner

स्थिति पैदा हो गई। तत्काल WTO के इतिहास में पहली बार हुआ कि supplementary declarations पारित किया जिसमें कहा गया कि अगर विकासशील देशों में कोई भी Public Health problem या epidemic की समस्या आएगी, तब उन देशों को compulsive License देने का अधिकार होगा।

वैश्विक राजनीति में भारत की सामर्थ्य : उसके बाद अगला विषय आया– सिंगापूर मुद्दों का। उन सिंगापुर मुद्दों का जब पर दूसरे विकासशील देशों को लगा कि इससे उनको क्या लेना देना। वे लगभग पीछे हट गए तो अकेले भारत रह गया। अमरीका व यूरोपीय देशों का दबाव था कि सिंगापुर मुद्दे पर Imidiate action programme Doha declarification में शामिल किया जाए तब भारत अकेले ही उनके विरोध में डट गया। भारत के वाणिज्य मंत्री मुरासोली मारन ने कह दिया था– "If singapore issues are included in the Doha declaration India shall stand out of Doha declaration" तो जो सम्मेलन 5 दिन चलना था, 18 घंटे विलम्बित हो गया। किन्तु जब मारन अड़ ही गये तो अगले द्विवार्षिक सम्मेलन तक सिंगापुर मुद्दों पर बातचीत को स्थगित कर दिया। अगले 2 वर्ष में भारत ने जब अन्य विकासशील देशों को समझाया तो अधिकांश विकासशील देश सिंगापुर मुद्दों के विरूद्ध हो गये। कुल 69 देशों ने अलग–अलग W.T.O. के डाइरेक्टर जनरल को लिखकर दे दिया कि My country does not want to have negotiations upon Singapore issues hence there is no explicit consensus, याने सर्व सम्मति नहीं है। Therefore negotiations should not commence upon these Singapore issues और इसलिए सिंगापुर मुद्दे अपनी मौत मर गए। इसने सिद्ध किया कि भारत अकेला भी इस प्रकार के अंर्तराष्ट्रीय मंचों पर कोई भी न्याय संगत stand लेकर एक प्रभावी परावर्तन या यू–टर्न ला सकता है। वर्ष 2014 में भी एन.डी.ए. सरकार ने जुलाई में खाद्य सुरक्षा के मुद्दे पर जो दृढ़ता दिखलाई तो 160 देशों के विश्व व्यापार संगठन में अकेले भारत की असहमति पर औद्योगिक देशों को सभी देशों के लिए असीमित समय तक शांन्ति प्रावधान की छूट देनी पड़ी है।

स्वदेशी व विकेन्द्रीकरण ही है उचित विकास पथ : इस प्रकार उदारीकरण के नाम पर आयात व विदेशी पूंजी को प्रोत्साहन देने व विश्व व्यापार संगठन के बहुपक्षीय समझौतों के जिन वर्तमान प्रावधानों पर हम चल रहे हैं, वे देश के लिए श्रेयस्कर नहीं है। इसी के कारण आज स्थिति ऐसी बनी हुई है कि हमको आजादी के 65 साल बाद भी देश की स्वतःस्फूर्त रोजगाार देने की सामर्थ्य समाप्त हो गई है और इसलिए नरेगा जैसी 84 artificial employment generation Schemes लागू की हुयी हैं। यह रोगी को आक्सीज़न देने जैसी योजनाएँ बनाकर लोगों को जिंदा रखना पड़ रहा है। क्योंकि

Scanned with OKEN Scanner

अर्थव्यवस्था की self sustained employment generation या स्वतः स्फूर्त रोजगार सृजन की क्षमता समाप्त हो रही है। ऐसे में हमारा विकास का मॉडल कैसा होना चाहिए? वह हमारी परिस्थितियों के अनुरूप होना चाहिये। हम आज 120 करोड़ लोग हैं। हमारे देश में 6 लाख से अधिक गाँव हैं, विश्व का सर्वाधिक पशुधन है, विश्व में सर्वाधिक कृषि योग्य भूमि भारत के पास है, हमारे पास 127 प्रकार के विविध कृषि जलवायु क्षेत्र हैं, और 400 से अधिक विविध प्रकार के संगठित लघु उद्योग संकुल (SSI clusters व 20,000 से अधिक असंगठित सूक्ष्म उद्योगों के संकुल) हैं। इसी क्रम में देश में 3 करोड़ 10 लाख लघु व सूक्ष्म उद्यम है, जिनमें 7 करोड़ 30 लाख लोग नियोजित हैं और इन लघु उद्यमों के द्वारा 6000 से अधिक प्रकार के उत्पाद या वस्तुओ का उत्पादन व कारोबार किया जाता है। इनमें से एक करोड़ 24 लाख ग्रामीण उद्यम है। इन उपरोक्त कुल 3 करोड़ 10 लाख लघु व सूक्ष्म उद्यमों में से 1 करोड़ 90 लाख सेवा प्रदाता उद्यम है। शिक्षा की दृष्टि से देखें तो देश के 13 लाख विद्यालयों में 23 करोड़ छात्र अध्ययनरत हैं और 700 विश्व विद्यालय या तत्सम डिग्री प्रदाता संस्थानों सहित 45,000 महाविद्यालयों में 2 करोड़ छात्र नामांकित हैं। यूरोप की कुल जनसंख्या ही हमारी कुल जनसंख्या के दो–तिहाई से भी कम है। ऐसे में हमारे देश की विशाल जनसंख्या व उपरोक्त वर्णित विविधताओं को देखते हुए हमें विकेन्द्रित नियोजन का मार्ग अपनाना चाहिये।

विकेन्द्रित नियोजन के अन्तर्गत हमें विकेन्द्रित उत्पादन, लघु उद्योग संकुलों के विकास, उसके लिये उत्पादक सहयोग संघों (Industry Consortium) के गठन की ओर तेजी से बढना चाहिये। इसके लिये चीन की भांति तकनीकी राष्ट्रवाद एवं फ्रांसिसी आर्थिक राष्ट्रवाद अर्थात् आर्थिक राष्ट्र निष्ठा या स्वदेशी की रीति नीति पर भी बल देना होगा। इसमें हमारी मितव्ययी प्रौद्योगिकी विकास (Frugal Engineering) की परम्परा को भी बल प्रदान करना होगा। विकेन्द्रित नियोजन अर्थात् कोई एक तहसील तालुका या मंडल है वहाँ कितना पशुधन है वहाँ पर कितने लोग काम करने योग्य हैं वहाँ पर किस प्रकार के प्राकृतिक संसाधन (raw materials) हैं, वहाँ की कृषि सामर्थ्य (agriculture potential) किस तरह की है, किस प्रकार के कुटीर, सूक्ष्म, लघु व बड़े उद्योग हैं, वहाँ कितने विद्यालय–महाविद्यालय हैं, लोगों में किस प्रकार का तकनीकी, व्यावसायिक या शिल्प ज्ञान है? इन सबके आधार पर वहाँ पर किस प्रकार के उद्यमों व कार्यों पर आधारित विकास की रचना होनी चाहिए? यह सभी विचार करके वैसी योजना विकसित करनी होगी। फिर पूरे देश के ग्रामों तहसीलों, जिलों व प्रदेशों की इन विकेन्द्रित स्थानीय योजनाओं को जोड़कर ही राष्ट्रीय योजनाओं में उन्हें समेकित (integrate) करना चाहिए। पूर्व सोवियत संघ की शैली में, अब तक भी हमारा योजना आयोग जिस प्रकार पूरे देश के लिये एक केन्द्रीकृत योजना बना कर उसे आरोपित करता है, वह शैली उपयुक्त

Scanned with OKEN Scanner

नहीं है। प्रथम पंचवर्षीय योजना के बाद से ही कृषि की उपेक्षा से आज देश के सकल घरेलू उत्पाद में कृषि का योगदान 50 प्रतिशत से घटकर 14 प्रतिशत रह गया है। देश के पास विश्व की सर्वाधिक 16 करोड़ हेक्टर कृषि योग्य भूमि एवं विश्व का सर्वाधिक 5.95 करोड़ हेक्टर, सिंचित क्षेत्रफल है। देश को प्रतिवर्ष हिमपात व वर्शा से कुल 40 करोड़ हेक्टर मीटर जल प्राप्त होता है। उसका अनुकूलतम उपयोग करके हमें देश की सम्पूर्ण कृषि योग्य भूमि को सिंचित बना सकते हैं। ऐसे में हम अपने कृषि उत्पादन को चतुर्गुणित कर विश्व की दो तिहाई (450 करोड़) जनसंख्या की खाद्य आपूर्ति करने में सक्षम बन विश्व की क्रमांक एक की खाद्य शक्ति (Food Power) बन सकते हैं। किसान की आय दो गुनी भी हो जाने पर वह उस आय से बाजार से जिन उत्पादकीय उद्योगों का माल खरीदेगा – इनमें बर्तन, पंखा, फ्रिज, स्कूटर, टी.वी., वस्त्रादि सम्मिलित है, उससे देश में औद्योगिक, उत्पादन, रोजगार, आय, सरकार का कर राजस्व आदि सभी बढ़ेंगे और विकास का मार्ग प्रशस्त होगा। इस सम्पूर्ण प्रक्रिया में चाहे थोड़ा समय लग जाये। लेकिन, यदि हम स्वदेशी भाव अपनाते हुये अपनी सभी आवश्यकताओं के लिये स्वदेशी वस्तुएँ ही खरीद कर राष्ट्र निष्ठा का परिचय देवें तो एक वर्ष में ही दृष्य बदल जायेगा। आज देश में चेरी के जुते के पालिश, कोलगेट के टूथपेस्ट, विदेशी, टी.वी., फ्रिज आदि, होण्डा आदि स्कूटर व मोटर साइकिल और फोर्ड आदि विदेशी कारों के स्थान पर उपलब्ध स्वदेशी उत्पाद खरीदें तो भी भारत अल्पकाल में विश्व औद्योगिक देशों की अग्र–पंक्ति में स्थापित हो जायेगा। एक वर्ष भर में ही विदेशी कम्पनियाँ अपना समग्र उत्पादन तंत्र को नाम मात्र की कीमत पर बेच कर जाने को बाध्य हो जायेगीं।

उदाहरणार्थ हमारे देश में 400 से अधिक संगठित लघु उद्योग संकुल (SSI Cluster) है और 20,000 से अधिक अति लघु या सूक्ष्म उद्योगों के असंगठित संकुल हैं। राजस्थान में भीलवाड़ा में वस्त्रोद्योग में सूटिंग्स का, गुजरात के मोरवी में सेरेमिक उद्योग व घड़ी उद्योग के, सूरत में रत्न संवर्द्धन एवं साड़ियों व शर्टिंग्स के उद्योगों का और तमिलनाडू के तिरूपुर में बुनाई वाले वस्त्रों (Knit Wears) के संकुल है। बीस वर्ष पूर्व तिरूपुर की जनसंख्या 1.5 लाख थी व आज 8 लाख है। वहाँ 6 लाख लोग 14 ग 14 किमी. क्षेत्र में लगी 4000 वस्त्रोद्योग इकाईयों में कार्यरत हैं। ऐसे विद्यमान उद्यम सकुंलों को के उद्यम सहायता संघ (Industri consortium) के रूप में विकसित करके इनके उत्पादों व ब्राण्डों को वैश्विक प्रतिष्ठा, पहचान व बाजार दिलाये जा सकते हैं। उर्ध्व सहायता संघों (Vertical Consortiums) के माध्यम से उन जटिल व उच्च प्रौद्योगिकी के उत्पादों का संवर्द्धन भी किया जा सकता है, जिनके सम्बन्ध में हम अभी बहुत पीछे हैं।

आज हमारा देश विदेशों में विशेष कर चीन से, आयातित वस्तुओं के बाजार में बदलता जा रहा है। देश में उत्पादित उत्पादों में भी विदेशी ब्राण्डों की ही अधिकता है। ऐसे

Scanned with OKEN Scanner

में हमारे उद्योगों को प्रतिस्पर्द्धी बनाने एवं उनकी प्रौद्योगिकी के समुन्नयन व उनके ब्राण्डों को वैश्विक स्तर पर स्थापित करने की दृष्टि से कन्सोर्टियम (Idustry Consortium) या 'उद्योग सहायता संघ' ही प्रभावी साधन सिद्ध होंगे। ऐसे सहायता संघ एक ही प्रकार के उद्योगों या प्रति पूरक उद्योगों के सम्मिश्रण के या, दोनों ही प्रकार के हो सकते हैं। अमेरिका व यूरोप में अनेक बड़े उद्योग ऐसे ही विकसित हुये व अब भी किये जा रहे हैं। एक समान उद्योगों के सहयोग–संघ व प्रतिपूरक उद्योगों के सहयोग संघ की कार्य शैलियाँ भिन्न–भिन्न होती हैं। प्रतिपूरक उद्योगों के सहयोग संघ की दृष्टि से यूरोपीय एयर बस निर्माता कम्पनी भी प्रारम्भ में एक उद्योग सहायता संघ (Industry Consortium) के रूप में ही विकसित हुयी थी। अमरीकी बोइंग वायुयान कम्पनी की स्पर्द्धा में यूरोप के छोटे–छोटे भिन्न–भिन्न अवयव बनाने में सक्षम सैंकड़ों लघु व मध्यम उद्योगों के सहयोग संघ के रूप में एयर बस. इण्डस्ट्री विकसित हुयी थी। ये विविध अवयव उत्पादक ¼Component Procures) भी अलग–अलग देशों में अवस्थित थे। अमेरिका में तो ऐसे उद्योग सहायता संघों के विकास के नियमन हेतु राष्ट्रीय सहकारी अनुसंधान अधिनियम 1984 से ही विधेयित किया हुआ है। इसी प्रकार आज "अल्प लागत अभियांत्रिकी" (Frugal Engineering) जिस जुगाड़ विकास भी कहते हैं, वह भी कम खर्चीली प्रौद्योगिकी के विकास में सहयोगी सिद्ध होती है। उदाहरणार्थ जब हमें 124 करोड़ रूपये की कीमत में भी 'क्रे' सुपर कम्प्यूटर, देने से अमेरिका ने मना कर दिया, तब हमने एक करोड़ रूपये से भी कम लागत में उसका विकल्प 'परम' पेरेलल प्रोसेसर विकसित कर लिया। इसी प्रकार तकनीकी राष्ट्रवाद का परिचय देते हुये चीन द्वारा डी.वी.डी. के स्थान पर ई.वी.डी. (Enhanced Versatile Disc) व डी.वी.डी. प्लेअर के स्थान पर ई.वी.डी. प्लेयर अमरीकी इण्टेल कम्पनी की सैण्ट्रीनो कूट कम्प्यूटर भाषा (encryption) के विकल्प के रूप में वापी (WAPI) और अमरीकी Windows आपरेटिंग सिस्टम के स्थान पर 'सी. ओ.एस' का विकास आदि ऐसे उदाहरण है। भारत भी चीनी तकनीकी राष्ट्रवाद (Techno-nationalism) की तरह राष्ट्रवाद के तकनीकी व आर्थिक आयामों को केन्द्र बिन्दु बना इस दिशा में तेजी से बढ़ते हुये विकास कर सकता है।

आज हम विकेन्द्रित नियोजन, समन्वित कृषि विकास, व मितव्ययी या जुगाड़ प्रौद्योगिकी (Frugal Engineering) विकास, उद्योग सहायता संघों (Industry consortiums) के निर्माणए तकनीकी राश्ट्रवादिता पर दृष्टि (Techno-nationalism) और स्वदेशी या आर्थिक राष्ट्रनिष्ठा के मार्ग को अपना कर हर हाथ को काम व हर खेत को पानी के पं. दीन दयाल जी के उद्घोष को साकार करते हुये सर्व समावेशी विकास के पथ पर आगे बढ़ सकते हैं।

Scanned with OKEN Scanner

परिशिष्ठ – 3

बढ़ता पर्यावरण संकट और एकात्म मानव दर्शन की प्रासंगिकता

पर्यावरण परिवर्तन पर कार्यरत अर्न्तराष्ट्रीय पैनल की हाल की चेतावनी विश्व के संपूर्ण जनजीवन और समस्त जीव सृष्टि के लिये गंभीर संकटों के प्रति आगह करने वाली है। विश्व के 120 देशों के प्रतिनिधि के रूप में कार्यरत इण्टर गर्वमेन्टल पैनल ऑन क्लाइमेट चेन्ज, ने विश्व के बढ़ते तापमान, पिघलते हिमनदों और बढते सामुद्रिक जलस्तर के बारे में गंभीर चेतावनी दी है। विश्व के बढते तापमान के कारण दक्षिणी गोलार्द्ध में कृषि फसलों के जल्दी पक जाने से फसलों की उत्पादकता में भारी गिरावट आ सकती है और भारत सहित दक्षिणी गोलार्द्ध के कई देशों में खाद्य संकट उपजने की संभावनाएँ बढ़ जायेंगी। इस अन्तर्राष्ट्रीय पैनल के ताजा प्रतिवेदन के अनुसार पिछले 50 वर्षों में पृथ्वी के उत्तरी गोलार्द्ध में बर्फ की मात्रा आधी रह गई है। ऐसे भी अनुमान है कि आगामी 20 से 25 वर्षो में तापमान इसी तरह बढ़ता रहा तो, हिमालय के हिमनद पिघल सकते हैं और गंगा नदी मौसमी नदी में बदल सकती है। यह भी उल्लेखनीय है कि जहाँ 20 वीं शताब्दी में वातावरण के तापमान में वृद्धि के कारण समुद्र का जलस्तर प्रतिवर्ष 1.8 मि.मी. बढ़ रहा था, वहीं हाल के वर्षों में समुद्र का जलस्तर अब 3.2 मि.मी. वार्षिक की दर से बढ़ रहा है। बढ़ते तापमान से वायु मण्डल की नमी या आर्द्रता को धारण करने की क्षमता बढ़ जाती है। प्रति एक डिग्री तापमान वृद्धि से वायुमण्डल में आर्द्रता 7 प्रतिशत तक बढ़ जाती है। हाल ही में उड़ीसा व आन्ध्र प्रदेश में आये हुए चक्रवातों से लेकर अनेक पर्यावरणीय आपदाऐं इस बढ़ते हुए तापमान का ही परिणाम है।

वैश्विक वातावरण में बढ़ रही इस विषमता के परिणामस्वरूप जन जीवन व सम्पूर्ण जीव सृष्टि के लिये उपजते संकटों के प्रति आज सारा विश्व गम्भीर रूप से चिन्ताग्रस्त है। इन्हीं चिन्ताओं के चलते दिसम्बर 2009 में विश्व के 192 राष्ट्रों के प्रतिनिधियों ने कोपेनहेगन में मिलकर समाधान खोजने का भी प्रयत्न किया था। लेकिन आधुनिक विकास में पिछड़ जाने के भय से दो सप्ताह चला यह सम्मेलन भी लगभग विफल रहा। उसके बाद दोहा से लेकर वारसा तक में हुये संयुक्त राष्ट्र के वातावरण परिवर्तन पर हो रहे आधारभूत सम्मेलनों (यू.एन., फ्रेमवर्क कन्वेशन ऑन क्लाइमेट चेन्ज) में कोई सार्थक समझौता नहीं हो पाया है। अनियंत्रित उपभोग एवं उत्पादन केन्द्रित आर्थिक वृद्धि की होड़ में, बढ़ रहे ऊर्जा व अन्य संसाधनों के उपभोग से, आज जल, थल एवं वायु सभी गम्भीर रूप से प्रदूषित हो रहे हैं एवं धरती पर विद्यमान अधिकांश प्राकृतिक संसाधन आगामी चालीस से सत्तर वर्षों में चुकते चले जायेंगे। कार्बन डाइआक्साइड सहित विविध ग्रीन हाउस गैसों के बढ़ते उत्सर्जन से वातावरण का तापमान बढ़ रहा है, श्वसन तंत्र सम्बन्धी रोग बढ़ रहे हैं एवं

Scanned with OKEN Scanner

पृथ्वी की रक्षा कवच रूपी ओजोन की परत का क्षरण हो रहा है। वायुमण्डल की ओजोन परत के क्षरण से सूर्य की पराबैंगनी किरणें वातावरण के तापमान को और तेजी से बढ़ायेंगी और चर्म कैन्सर सहित कई नवीन रोगों को जन्म देंगी। इस बढ़ते तापमान से गलते हिमनद व पिघलती ध्रुवीय हिम परत एक ओर तो समुद्र के जल स्तर को इतना बढ़ा देंगी कि कई नगर एवं द्वीप जल मग्न हो जायेंगे। दूसरी ओर हिमनदों के पिघल जाने से गंगा जैसी सदानीरा नदियाँ सूखती चली जायेंगी और उच्च तापमान पर, फ़सलों के अल्पावधि में ही पक जाने से उनकी उपज घटेगी और इससे गम्भीर खाद्य संकट उत्पन्न होगा।

गम्भीर प्रदूषण के कारण विगत पूरी शताब्दी (1901 से 2000) की तुलना में पिछले एक दशक (2000–2009) की ग्रीष्म ऋतु, सर्वाधिक गरम रही है। वर्षा में अनियमितता जनित क्रमिक अकाल व बाढ़ें, समुद्री तूफानों की बढ़ती आवृत्ति व व्यापकता, महासागरों से लेकर छोटे–छोटे जलाशयों एवं भू–गर्भीय जल पर्यन्त सभी जल संसाधनों का बढ़ता प्रदूषण, रासायनिक कृषि से बंजर होती भूमि एवं त्वरित निर्वनीकरण आदि सम्पूर्ण जीव सृष्टि के अस्तित्व के लिये चुनौती बनते जा रहे हैं। विगत 50 वर्षों में 120 करोड़ हेक्टर कृषि योग्य भूमि, जो पृथ्वी के कुल धरातलीय क्षेत्रफल का लगभग 9 प्रतिशत है, ऐसी बंजर भूमि में बदल गयी है जिसमें अब किसान के लिये खेती करना सम्भव नहीं रहा है। अकेले 1990–95 के बीच छः वर्ष की अवधि में ही 5.6 करोड़ हेक्टर क्षेत्रों का निर्वनीकरण हुआ है। आज विकासशील देशों में 80 करोड़ व विकसित देशों में 3.4 करोड़ लोग खाद्य असुरक्षा में जूझ रहे हैं। भारत में भी 34 करोड़ लोग आज खाद्य संकट से ग्रस्त है। विगत 25 वर्षो में प्रति व्यक्ति जल उपलब्धता में भी 30 प्रतिशत की कमी आयी है और वर्श 2050 तक वि व की 42 प्रतिशत जनसंख्या जल की अपर्याप्त उपलब्धि की शिकार हो जायेगी। विश्व के कुछ प्रमुख देशों में औसत जल उपलब्धि किस प्रकार घटेगी यह तालिका क्रमांक 1 से स्पष्ट है। इसी घटती जल उपलब्धि से कृषि, उद्योग सहित सभी प्रमुख आवश्यकताओं की पूर्त्ति होनी है।

विश्व के प्रमुख देशों में प्रति व्यक्ति जल उपलब्धता

	घटती प्रति व्यक्ति जल उपलब्धता		
देश	वर्ष 1975	वर्ष 2000	वर्ष 2025
भारत *	3100	1900	1400
चीन	3000	2200	1900
पाकिस्तान	5600	2700	1600
इंग्लैण्ड	1300	1200	1200
अमरीका	11300	8900	7600
बांग्लादे ा	15800	9400	6800

' भारत के पास विश्व की सर्वाधिक 18.5 करोड़ हेक्टर कृषि योग्य भूमि होने व वर्ष भर कृषि योग्य मौसम होने से जल आवश्यकता विश्व में सर्वाधिक है एवं कुल जल का 83

Scanned with OKEN Scanner

प्रतिशत कृषि मे प्रयुक्त होने से जलाभाव का संकट गम्भीर रूप ले सकता है। विशेषकर, देश की आधी से अधिक जनसंख्या कृषि पर निर्भर होने से घटती प्रति व्यक्ति जल उपलब्धि अत्यन्त चिन्ताजनक है।

विश्व में कुल 140 करोड़ घन किमी जल है इसमें से केवल 2.7 प्रतिशत या 3.7 करोड़ घन किमी ही शुद्ध जल है, जिसका भी अधिकांश भाग ध्रुवीय क्षेत्र या गहरे जल स्त्रोतों के रूप में है। भारत की जनसंख्या विश्व की 15 प्रतिशत है, लेकिन हमारे शुद्ध जल के स्त्रोत विश्व के शुद्ध जल के 4 प्रतिशत ही है। भारत की वार्षिक जल उपलब्धता 40 करोड़ हेक्टर मीटर है। इसमें भी लगभग 7–10 करोड़ हैक्टर मीटर हिमपात से प्राप्त होता है, और 30 करोड़ हैक्टर मीटर मानसून से प्राप्त होता है। एक ओर बढ़ती उष्मा से जिस गति से हिमालय के हिमनद पिघल रहे है, हिम–जल के स्त्रोत घटते जायेंगे। कुछ वैज्ञानिक आकलन ऐसे भी है, कि 2035 तक ये हिमनद पूरी तरह गल सकते है। ऐसे में गंगा व यमुना जैसी सदा नीरा नदियाँ वर्षाकाल के बाद सूख सकती हैं, एवं देश के जल स्त्रोत का एक चौथाई चुक सकता है। देश के कुल जल संसाधनों का 83 प्रतिशत सिंचाई में प्रयुक्त होता है।

अनियन्त्रित उपभोग व प्रदूषण

आज पर्यावरण विनाश का प्रमुख कारण, विकास की परिभाषा अधिकतम उत्पादन व उपभोग पर आधारित है। यथा जिस देश में प्रति व्यक्ति ऊर्जा व खनिज सहित विविध उत्पादों का जितना अधिक उत्पादन व उपभोग है, उसे उतना ही विकसित माना जाता है, अर्थात् जो देश इन सबके उत्पादन व उपभोग में सर्वाधिक पर्यावरण विनाश करता है, वही सर्वाधिक विकसित माना जाता है। आज अमेरिका में प्रति 1000 व्यक्ति पर 765 व यूरोप में 300 वाहन हैं। चीन में 2005 तक प्रति हजार व्यक्तियों पर 24 कारें थी जो आज बढ़कर 40 हो गयी है। अब 2010 के अन्त तक चीन विश्व का सबसे बड़ा कार उत्पादक व उपभोग वाला देश भी बन गया है। बढ़ते वैश्विक तापमान का मुख्य कारण ग्रीन हाउस गैसों का बढ़ता उत्सर्जन है। चीन आज सर्वाधिक ग्रीन हाउस गैसों का उत्सर्जन करता है। अमेरिका चीन के बाद है, मगर चीन का उत्सर्जन अमेरिका के दुगने से भी अधिक है।

वस्तुतः जिस देश का ऊर्जा व अन्य संसाधनों का जितना अधिक उपभोग है, वह उतना ही अधिक पर्यावरण विनाशकर्त्ता है। इसलिये यदि प्रति व्यक्ति विद्युत उपभोग की दृष्टि से भी देखें तो भारत का प्रति व्यक्ति विद्युत उपभोग मात्र 631 किलोवाट हावर (Kwh) है। जबकि कनाडा, अमेरिका, आस्ट्रेलिया, जापान, फ्रांस, जर्मनी, इंग्लैण्ड, रूस व इटली का प्रति व्यक्ति विद्युत उपभोग क्रमशः 17,179 Kwh, 13,338 Kwh, 11,126 Kwh,

Scanned with OKEN Scanner

8076 Kwh, 7689 Kwh, 7030 Kwh, 6206 Kwh, 5642 Kwh, व 17,179 Kwh हैं। विद्युज्जन भी एक प्रमुख प्रदूषणकारी क्रिया है।

उपभोग की विषमता

उपरोक्त ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन व विद्युत उपभोग एवं खनिजों सहित अन्य संसाधनों के उपभोग में राष्ट्रों के बीच भारी अन्तराल से ही प्रतीत हो जाता है कि जो व्यक्ति व देश आर्थिक दृष्टि से जितने सम्पन्न है, वे उतना ही अधिक संसाधनों का उपभोग कर वातावरण का विनाश कर रहे हैं। साधनों के उपभोग में यदि विश्व के 20 प्रतिशत धनाढ्यतम व निर्धतनम व्यक्तियों के बीच के अन्तर पर एक दृष्टिपात करें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि सम्पन्नतम वर्ग का अनियन्त्रित उपभोग ही आज की पर्यावरण विनाश का कारण है।

विश्व की धनाढ्यतम 20 प्रतिशत जनसंख्या आज गैर सरकारी क्षेत्र के कुल उपभोग का 87 प्रतिशत उपभोग कर रही है। वहीं विश्व के 20 प्रतिशत निर्धनतम लोग गैर सरकारी क्षेत्र के कुल उपभोग का मात्र 1.32 प्रतिशत ही उपभोग कर रहे हैं। विश्व की 20 प्रतिशत सर्वाधिक धनी जनसंख्या कुल ऊर्जा का 56 प्रतिशत व निर्धनतम 20 प्रतिशत केवल 4 प्रतिशत उपभोग कर रही है। विश्व के कुल कागज उत्पादन का 84 प्रतिशत विश्व की 20 प्रतिशत धनाढ्यतम व मात्र 1.3 प्रतिशत का 20 प्रतिशत निर्धनतम जनसंख्या उपभोग कर रही है। कारों के उपयोग की दृष्टि से 86 प्रतिशत कारें 20 प्रतिशत सम्पन्नतम लोगों के पास व 1.4 प्रतिशत कारें विश्व के 20 प्रतिशत निर्धनतम लोगों के पास हैं। उपभोग में यह विषमता विगत 4 दशकों में बढ़ती ही चली गयी है। विश्व के सबसे धनी 20 प्रतिशत व सबसे निर्धन 20 प्रतिशत के बीच उपभोग व्यय अनुपात 1970 में 30:1 था, जो बढ़कर 77:1 हो गया एवं नव उदारवादी आर्थिक नीतियों के चलते धनी व निर्धन के बीच यह खाई बढ़ती ही जा रही है। इसलिये वैश्विक प्रदूषण की दृष्टि से भी कार्बन डाई आक्साइड के उत्सर्जन की दृष्टि से 56 प्रतिशत उत्सर्जन विश्व के सबसे धनी 20 प्रतिशत का व 3.1 प्रतिशत उत्सर्जन सबसे निर्धन 20 प्रतिशत का है।

प्रति व्यक्ति उत्पादन व प्रति व्यक्ति उपभोग आधारित विकास की आधुनिक परिभाषाओं के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति व राष्ट्र में अपने उत्पादन व उपभोग को अधिकतम करने की स्पर्द्धा, पर्यावरण के इस क्षरण को अधिकाधिक विषमता की ओर ही ले जायेगी। प्रति व्यक्ति उपभोग व उत्पादन में वृद्धि के इस स्पर्द्धात्मक दौर में जहाँ एक ओर तो देश व विश्व के अधिकांश खनिज संसाधन आगामी 30 से 60 वर्षों के चुक ही जायेंगे, सारे सघन वन विरल होते–होते नाम मात्र के रह जायेंगे। पर्वतीय क्षेत्रों की मिट्टी की परत नष्ट होकर वे सभी क्षेत्र स्थायी रूप में हरीतिमा विहीन हो जायेंगे। रासायनिक कृषि से कृषि

Scanned with OKEN Scanner

योग्य भूमि बंजर होती चली जायेगी। वायुमण्डल इतना विशाक्त हो जायेगा कि बिना मास्क के खुले में चलना–फिरना कठिन हो सकता है। कीटनाशकों व रसायनों से भू–गर्भीय जल सहित सारे जल स्त्रोत इतने प्रदूषित हो जायेंगे कि रिवर्स ऑस्मोसिस से फिल्टर किये बिना जल पीना सम्भव नहीं रह जायेगा। आगामी पीढ़ीयों के लिये हम न तो कोई संसाधन छोड़ कर जायेंगे एवं नहीं ही उनके लिये यह धरती निवास व जीवन निर्वाह के लिये वैसी ही निरापद रहेगी, जैसी हमें हमारे पूर्वजों से हमें प्राप्त हुयी है।

विकल्पः एकात्म मानव दर्शन आधारित ''धारणक्षम विकास'':

धारणक्षम या टिकाऊ विकास (Sustainable Development) हेतु आवश्यक है कि हम अपने उपभोग को ''धारणक्षम उपभोग (Sustainable Consumption) की सीमा में परिमित करे, अर्थात् हम उपभोग को इस प्रकार परिमित करें कि, समस्त संसाधनों की उपलब्धि अनन्तकाल तक भावी पीढ़ियों के लिये सुलभ रहे। इसे सुनिश्चित करने हेतु हमें स्व0 प0 दीनदयाल उपाध्याय द्वारा प्रतिपादित विकास के ''एकात्म मानव दर्शन'' के विचार को अपनाना होगा।

धारणक्षम उपभोग या संधारणीय उपभोग (Sustainable Consumption): यदि हम अपना प्रति व्यक्ति उपभोग बढ़ाते चले गये और उसमें भी अ–नवकरणीय (non-renewable) संसाधनों का ही उपभोग करते चले गये तो यह अधिक समय तक नहीं चल पायेगा। इसी प्रकार नवकरणीय साधनों का भी उनके 'नवकरण की गति' (rate of renewal) से अधिक गति से किया तो वे भी नष्ट हो जायेंगे। यथा ताम्बा, लोहा, सीसा, जस्ता, कोयला, पेट्रोलियम व अन्य खनिज आदि अ–नवकरणीय हैं। जल, जल विद्युत, वायुजनित ऊर्जा, वनस्पति जगत आदि नवकरणीय है जो पुनः प्राप्त हो सकते हैं। इन नवकरणीय साधनों का उपभोग भी उनके पुनर्जनन की गति से अल्प या धीमी गति से करने पर ही वे भावी पीढ़ियों के लिये सुलभ रहेंगे। आज विश्व में वाहनों व अन्य धात्विक उत्पादों का जो प्रति व्यक्ति उपभोग है उसकी पूर्त्ति प्रति व्यक्ति 12–15 टन वार्षिक टन की दर से भू–गार्भिक खनिजों का 'खनन व प्रविधेयन (Mining and Processing) से ही होती है। अब यदि हम जितना इनका उपभोग बढ़ायेंगे उतनी ही धरती जर्जर होकर अन्तःतः संसाधन विहीन होती चली जायेगी। चीन में 2005 में प्रति एक हजार जनसंख्या पर 24 कारें थी अब 40 हो गयी है। चीन आज विश्व का सबसे बड़ा कार उत्पादक देश बनने जा रहा हैं। यूरोप में प्रति 1000 जनसंख्या पर 300 व अमेरिका में 765 वाहन हैं। क्या पूरे शेष विश्व में 100 या 50 कार प्रति हजार छोड़ 20 कार प्रति हजार की संख्या भी धारणक्षम हो सकेंगी? इसी प्रकार अन्य उत्पादों का भी विचार करिये। इस प्रकार अ–नवकरणीय (Non-renewable) साधनों के प्रति व्यक्ति उपभोग में प्रत्येक वृद्धि हमारे

Scanned with OKEN Scanner

कल का उजाड़ने वाली ही है। नवकरणीय साधनों के उपभोग में वृद्धि की वर्तमान दर भी विश्व के इतनी अधिक है कि उनका पुनर्जनन सम्भव नहीं होने से भावी विकास को चौपट करेगी। आज विश्व में कई पादप व जन्तु प्रजातियाँ भी लुप्त हो गयी है।

इस सम्पूर्ण विनाशकारी विकास क्रम का आभास हमारे मनीषियों को लाखों वर्ष पूर्व ही था। इसलिये ईशावास्योपनिषद में कहा है कि यह सम्पूर्ण विश्व "परब्रह्म परमेश्वर से व्याप्त है, इसका त्याग पूर्वक भोग करो"। यथाः

ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्व स्विद्धनम।।

यदि हम अकारण विद्युत का अपव्यय करते है, तो कहीं न कहीं ताप विद्युत गृह में कोयले का दहन होगा, कार्बनडाइ आक्साइड व अन्य गैसें वायुमण्डल को प्रदूषित करेंगी और कोयले के भण्डार चुकेंगे। प्रत्येक वस्तु या सेवा के उपभोग में हमें यही देखना होगा कि इससे पर्यावरण की कितनी क्षति हो रही है? हम कितने "कार्बन फूट प्रिण्ट" या "कार्बन पग चिन्ह" या "प्रदूषक पग चिन्ह" छोड़ रहे हैं।

पर्यावरण के क्षेत्र में बढ़ती विषमताओं और आर्थिक विकास की दृष्टि से 50 वर्ष पूर्व, प0 दीन दयाल उपाध्याय द्वारा प्रतिपादित 'एकात्म मानव दर्शन' आज एकमात्र समाधान प्रतीत होता है। यदि व्यक्ति स्वयं को सम्पूर्ण वैश्विक संरचना के एक अंगागी घटक के रूप में मानकर चलता है, तब ऐसी स्थिति में हमारे सारे व्यवहार पर्यावरण व समाज के प्रति सहिष्णुता पूर्ण होंगे। व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र, विश्व, जीव–सृष्टि और परमेष्टी परस्पर अवलम्बित हैं। इन सबके बीच परस्पर संबन्धों को दृष्टिगत रखते हुए ही विश्व के प्रत्येक व्यक्ति को अपना उपभोग व जीवन–चर्या निश्चित करनी चाहिए। प0 दीनदयाल जी के इस विचार के अधीन प्रत्येक व्यक्ति को यह विचार मन में रखना चाहिये कि, वह स्वयं कोई स्वायत्त या सम्प्रभु इकाई नहीं होकर वह अपने परिवार व समाज का अंग है। प्रत्येक परिवार, अपने समाज या समुदाय का अंग है। समाज, या समुदाय राष्ट्र का अंग है। राष्ट्र विश्व का, विश्व इस सम्पूर्ण सृष्टि का, और यह सृष्टि उस परमेष्टी का अंग है जो इस अनन्त ब्रह्माण्ड में संव्याप्त है। इसलिये हमारा उपभोग इन सभी घटकों के बीच समन्वय पर आधारित होना चाहिये।

Scanned with OKEN Scanner

लेखक द्वारा लिखित स्नातक तथा स्नात्तकोत्तर स्तरीय पाठ्यपुस्तकें

1) प्रबंध
2) प्रबन्ध व संगठन व्यवहार
2) व्यावसायिक सन्नियम
3) प्रतिभूति विनियम एवं वित्तीय बाजार
4) कंपनी अधिनियम
5) व्यावसायिक वातावरण
6) उद्यमिता
7) अन्तर्राष्ट्रीय विपणन
8) व्यावसायिक संचार
9) विक्रय प्रबंध
10) औद्योगिक एवं व्यापारिक सन्नियम

Scanned with OKEN Scanner

लेखक परिचय

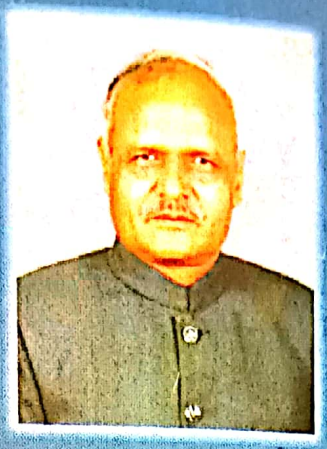

प्रो. भगवती प्रकाश शर्मा
पीएच.डी., एम.कॉम

प्रो. शर्मा 1978 से वाणिज्य एवं प्रबन्ध संकायों में स्नातकोत्तर स्तर पर अध्यापन कर रहे हैं। आपने वाणिज्य एवं प्रबन्ध के क्षेत्र में स्नातक एवं स्नातकोत्तर स्तर के छात्रों के लिये 11 पुस्तकें लिखी है जो हिमालय पब्लिकेशन आदि राष्ट्रीय स्तर के ख्यातनाम प्रकाशकों द्वारा प्रकाशित की गयी हैं। इनके मार्गदर्शन में 15 छात्रों ने पीएच.डी. स्तर का शोध किया है एवं इन्होने 80 से अधिक अन्य शोध परियोजनाओं का निर्देशन किया है। विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में इनके 70 से अधिक लेख एवं शोध पत्र प्रकाशित हुये हैं।

आर्थिक एवं वैश्विक व्यापार सम्बन्[illegible]चि होने से प्रो. शर्मा ने स्वदेशी जागरण मंच की [illegible] व्यापार संगठन (W.T.O.) के पाँचवे एवं छठे [illegible] द्विवार्षिक सम्मेलन में 2003 में केन्कुन (मैक्सिको) व 2005 में हाँगकाँग में भाग लिया है।

प्रबन्ध के क्षेत्र में प्रो. शर्मा अन्तर्व्यक्ति व्यवहार की प्रभावशीलता, समय प्रबन्धन, संगठन विकास, शून्य आधारित बजट परिवर्तनों के प्रबन्ध, नेतृत्व विकास आदि विषयों के प्रशिक्षक भी है।

इन्होने आर्थिक वैश्वीकरण, विश्व व्यापार संगठन, स्वदेशी, विनिवेश आदि विषयों पर 10 लघु पुस्तिकाएँ भी लिखी है। वर्तमान में प्रो. शर्मा स्वदेशी जागरण मंच के राष्ट्रीय सहसंयोजक भी है।

इनका ई–मेल आई. डी. bpsharma131@yahoo.co.in है।

Scanned with OKEN Scanner